योगसार महामण्डल विधान

लेखक

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पी-एच.डी., डी-लिट्

प्रकाशक
पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट
ए-4, बापूनगर, जयपुर-302 015
फोन : 0141-2707458, 2705581
E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

प्रथम संस्करण : 5 हजार
(1 दिसम्बर, 2018 ई.)

प्रस्तुत संस्करण में कीमत करनेवाले दातारों की सूची

1. वी.वि. महिला मण्डल, बापूनगर, जयपुर	2,100
2. पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में हस्ते कमलाबाई भारिल्ल, जयपुर	2,000
3. श्रीमती आशा शान्तिकुमारजी पाटील, जयपुर	1,100
4. श्री विनीत जैन अशोककुमार जैन, मुम्बई	1,100
5. श्री हितंकर जैन पिताश्री डॉ. महावीरप्रसाद जैन, उदयपुर	1,100
6. श्री भागचन्दजी शाह, जयपुर	1,100
7. श्री अरुणकुमारजी पोद्दार, जयपुर	1,100
8. श्री ताराचन्दजी जैन सोगानी, जयपुर	1,100
9. श्री बाबूलाल त्रिवेदी, पल त्रिवेदी, गांधीनगर	1,001
10. श्री अर्पित जैन, भिण्ड	600
11. पण्डित नीतेन्द्र शास्त्री, अकांझरी, जयपुर	500
12. गुप्तदान	500
13. श्री अतिशय जैन, चौरई	500
14. श्री देवांश जैन, अमरमऊ	500
15. पण्डित विवेक गडेकर, जयपुर	500
16. विवेक जैन शास्त्री, द्वितीय वर्ष, ग्वालियर	101
17. सम्मेद खोत, जयपुर	100
कुलयोग	**15,002**

मूल्य : **8 रुपये**

टाइपसैटिंग :
त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स,
ए-4, बापूनगर,
जयपुर

मुद्रक :
रैनबो ऑफसेट प्रिंटर्स
बाईस गोदाम, जयपुर

अनुक्रमणिका

1.	प्रक्षाल पाठ	7
2.	विनय पाठ	10
3.	पूजा पीठिका	12
4.	श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजन	17
5.	मंगलाचरण	21
6.	योगसार पूजन	22
14.	महाऽर्घ्य	52
15.	शान्तिपाठ/विसर्जन	53
16.	योगसार भक्ति	55

प्रकाशकीय

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल को गद्य लेखन पर तो महारत हासिल है ही, पद्य लेखन में भी कोई उनका सानी नहीं है। पश्चात्ताप खण्डकाव्य व वैराग्य जैसे महाकाव्यों की रचना के उपरान्त दिगम्बर जैन समाज के सर्वमान्य आचार्य कुन्दकुन्दप्रणीत पंचपरमागमों पर समयसार महामण्डल विधान, प्रवचनसार महामण्डल विधान, नियमसार महामण्डल विधान और अष्टपाहुड़ महामण्डल विधान लिखकर आपने यह सिद्ध भी कर दिया है। इन विधानों में प्राकृत की मूल गाथाओं एवं इनकी टीका में समागत कलशों का रसास्वादन भी पाठकों ने अन्तर्मन से किया है।

इसी शृंखला में अब आपने योगसार महामण्डल विधान को अपनी लेखनी का विषय बनाया है, निश्चित ही पूर्व विधानों की भांति इस कृति का समुचित समादर होगा।

आपकी महत्वपूर्ण कृतियाँ धर्म के दशलक्षण, क्रमबद्धपर्याय, बारह भावना : एक अनुशीलन, परमभावप्रकाशक नयचक्र, चैतन्यचमत्कार, निमित्तोपादान, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, शाश्वत तीर्थधाम : सम्मेदशिखर, शाकाहार : जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में, आत्मा ही है शरण और गोम्मटेश्वर बाहुबली : एक नया चिन्तन आदि प्रमुख हैं।

अब तक आपके साहित्य पर तीन छात्रों ने शोधकार्य किया है – जिनमें डॉ. महावीरप्रसाद जैन ने 'डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल : व्यक्तित्व और कर्त्तृत्व' विषय पर और डॉ. सीमा जैन ने 'डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के साहित्य का समालोचनात्मक अनुशीलन' विषय पर मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर से तथा डॉ. राजेन्द्र संगवे द्वारा मद्रास विश्वविद्यालय से 'डॉ. हुकमचंद भारिल्ल की गद्य विधाओं में जैनदर्शन' विषय पर पी-एचडी की उपाधि प्राप्त की है।

इसके साथ ही अरुणकुमार जैन ने 'डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल और उनका कथा साहित्य', नीतू चौधरी द्वारा 'शिक्षा शास्त्री परिप्रेक्ष्य में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के शैक्षिक विचारों का समीक्षात्मक अध्ययन', ममता गुप्ता द्वारा 'धर्म के दशलक्षण : एक अनुशीलन' तथा शिखरचन्द जैन ने 'डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व' विषय पर लघु शोध प्रबन्ध लिखे हैं जो आपके साहित्यिक अवदान के जीवन्त दस्तावेज हैं।

समयसार विधान, प्रवचनसार विधान, नियमसार विधान व अष्टपाहुड़ विधान के पश्चात् पंचास्तिकाय विधान भी आपकी लेखनी के विषय बनें – हम ऐसी आशा करते हैं।

आप स्वस्थ रहें, दीर्घायु को प्राप्त हों और नित नूतन सृजन कर हम सबका इसी प्रकार मार्ग प्रशस्त करते रहें – यही पवित्र भावना है।

इस विधान में उत्थानिका व मंत्र बनाने तथा प्रूफ रीडिंग का कार्य पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील ने श्रमपूर्वक किया है। आपके उक्त कार्य में अच्युतकान्त शास्त्री का भी महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा है। अतः हम आप दोनों के आभारी हैं।

सुन्दर टाईप सैटिंग के लिए श्री कैलाशचन्द शर्मा तथा आकर्षक मुखपृष्ठ और प्रकाशन के लिए श्री अखिल बंसल को भी धन्यवाद देते हैं।

हमें विश्वास है कि इस विधान के निमित्त से यह विधान करने वाले को योगसार की विषयवस्तु का सहज ही स्वाध्याय होगा।

वे इसमें वर्णित अपनी शुद्धात्मा का स्वरूप समझकर उसके आश्रय से अपना मोक्षमार्ग प्रशस्त करें – इसी मंगल भावना के साथ विराम लेता हूँ।

२१ नवम्बर २०१८ ई. – **ब्र. यशपाल जैन,** प्रकाशन मंत्री

योगसार का सार

मुनिराज श्री योगीन्दुदेव कृत योगसार विशुद्ध आध्यात्मिक ग्रन्थ है। सम्पूर्ण ग्रन्थ पर आचार्य कुन्दकुन्द के समयसार की छाया स्पष्ट देखी जा सकती है। ग्रन्थाधिराज समयसार के समान इस ग्रन्थ में भी शुद्ध, निरंजन, निराकार, एक ज्ञायक स्वभावी निज भगवान आत्मा के ही गीत गाये हैं और उसमें ही जमने-रमने की पावन प्रेरणा दी गई है।

तत्कालीन लोक के सन्दर्भ में ग्रन्थकार का जो आकलन है, वह आज की परिस्थितियों में भी उतना ही सटीक एवं वास्तविक प्रतीत होता है, जितना कि तत्कालीन युग में रहा होगा। ग्रन्थकार की दृष्टि में सम्पूर्ण जगत की स्थिति तो यह है, या तो वह अपने धंधे-व्यापार में उलझा रहता है, आजीविका जुटाने में ही लगा रहता है, या फिर उपलब्ध भोग सामग्री के भोगने में ही मग्न रहता है।

यदि थोड़ी-बहुत धर्मबुद्धि हुई तो भी धर्म के मूल स्वरूप तक नहीं पहुँचता है या तो पोथियों को पढ़-पढ़कर पण्डित बन जाता है या फिर मठ-मन्दिर में रहने लगता है और मठाधीश बन जाता है या फिर केशलुंच करके साधुओं की जमात में शामिल हो जाता है; पर आत्मा को जानने में अपने पुरुषार्थ को नहीं लगाता। इसकारण जहाँ का तहाँ ही रहता है, आत्मकल्याण के मार्ग पर नहीं बढ़ पाता है, मुक्ति के मार्ग पर नहीं चल पाता है। ऐसी स्थिति में मुक्ति की प्राप्ति कैसे संभव है?

सम्पूर्ण ग्रन्थ में आद्योपांत देह-देवल में विराजमान निज भगवान आत्मा की आराधना की बात कही गई है। उनका कहना है कि यदि भगवान आत्मा की खोज करनी है तो देह-देवल में करो, तन-मन्दिर में करो; अन्यत्र करने से कोई लाभ होने वाला नहीं है।

मुनिराज श्री योगीन्दुदेव का पूरा वजन एक मात्र निज भगवान आत्मा की आराधना करने पर ही है। निज भगवान आत्मा की आराधना पर इतना अधिक बल देने का कारण यह तो है ही कि वही एकमात्र मुक्ति का मार्ग है; दूसरा कारण यह भी है कि इस जगत में ऐसे पुरुष बहुत विरल हैं, जो निज भगवान आत्मा को जानते हैं, आत्मा की बात ध्यान से सुनते भी हैं। निज आत्मा का ही ध्यान करने वालों की विरलता तो और भी अधिक है।

जिन-अध्यात्म में निज भगवान आत्मा की आराधना पर तो सर्वाधिक वजन दिया ही जाता है, साथ में पुण्य को पाप के समान ही हेय बताया जाता है।

इस ग्रन्थ की रचना भवभय से भयभीत योगीन्दुदेव ने स्वयं को संबोधित करने के लिए ही की है; जैसा कि इस ग्रन्थ के अन्तिम दोहे से स्पष्ट है।

मुनिराज श्री योगीन्दुदेव द्वारा स्वयं को संबोधन करने के लिए रचा गया यह ग्रन्थ यदि हमारे भी दैनिक पाठ की वस्तु बने तो हम सबका इससे बड़ा सौभाग्य और कुछ भी नहीं होगा।

इस पूजन विधान करने से पूजन-विधान में शामिल होने वाले अध्यात्मप्रेमी भाई-बहिनों का इस कृति का स्वाध्याय एक बार तो आद्योपान्त हो ही जावेगा। विद्वानों के स्पष्टीकरण से विषयवस्तु विशेष स्पष्ट होगी। आध्यात्मिक वातावरण बनने से गहराई में जाने की प्रेरणा भी प्राप्त होगी।

मेरा पक्का विश्वास है जो व्यक्ति इस ग्रन्थ में बताये गये आत्मा के स्वरूप और धर्म के मर्म को समझ लेगा, समझने में अपने उपयोग को लगायेगा; वह अवश्य ही आत्माराधक होगा और धर्म के मर्म का वेत्ता होगा। उसका कल्याण भी अवश्य होगा।

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

डॉ. भारिल्ल के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१. समयसार : ज्ञायकभावप्रबोधिनी टीका	५०.००
२-६. समयसार अनुशीलन भाग १ से ५	१२५.००
७. समयसार का सार	३०.००
८. गाथा समयसार	१०.००
९. प्रवचनसार : ज्ञानज्ञेयतत्त्वप्रबोधिनी टीका	५०.००
१०-१२. प्रवचनसार अनुशीलन भाग १ से ३	९५.००
१३. कुन्दकुन्द शतक अनुशीलन	२०.००
१४. प्रवचनसार का सार	३०.००
१५. नियमसार : आत्मप्रबोधिनी टीका	५०.००
१६-१७. नियमसार अनुशीलन भाग १ से ३	७०.००
१८. छहढाला का सार	१५.००
१९. मोक्षमार्गप्रकाशक का सार	३०.००
२०. वैराग्य महाकाव्य	२५.००
२१. समयसार महामण्डल विधान	२५.००
२२. समयसार महामण्डल विधान (गाथा सहित)	३५.००
२३. प्रवचनसार महामण्डल विधान	२०.००
२४. प्रवचनसार महामण्डल विधान (गाथा सहित)	२०.००
२५. नियमसार महामण्डल विधान	२५.००
२६. नियमसार महामण्डल विधान (गाथा सहित)	३०.००
२७. अष्टपाहुड़ महामण्डल विधान	२५.००
२८. दर्शन-सूत्र-चारित्रपाहुड़ मण्डल विधान	१०.००
२९. बढ़ते कदम	१०.००
३०. ४७ शक्तियाँ और ४७ नय	१५.००
३१. पंडित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व	२०.००
३२. परमभावप्रकाशक नयचक्र	४०.००
३३. चिन्तन की गहराइयाँ	३०.००
३४. तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	२५.००
३५. धर्म के दशलक्षण	२०.००
३६. क्रमबद्धपर्याय	२०.००
३७. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (पूर्वार्द्ध)	२०.००
३८. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (उत्तरार्द्ध)	१०.००
३९. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (सम्पूर्ण)	३०.००
४०. बिखरे मोती	१६.००
४१. सत्य की खोज	२५.००
४२. अध्यात्म नवनीत	१५.००
४३. आप कुछ भी कहो	१५.००
४४. आत्मा ही है शरण	१५.००
४५. सुक्ति-सुधा	१८.००
४६. बारह भावना : एक अनुशीलन	१६.००
४७. दृष्टि का विषय	१०.००
४८. गागर में सागर	७.००
४९. पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव	१२.००
५०. णमोकार महामंत्र : एक अनुशीलन	१५.००
५१. रक्षाबन्धन और दीपावली	५.००
५२. आचार्य कुंदकुंद और उनके पंचपरमागम	५.००
५३. युगपुरुष कानजीस्वामी	५.००
५४. वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	२०.००
५५. योगसार अनुशीलन	२५.००
५६. योगसार महामण्डल विधान	८.००
५७. मैं कौन हूँ	११.००
५८. रहस्य : रहस्यपूर्ण चिट्ठी का	१०.००
५९. निमित्तोपादान	८.००
६०. अहिंसा : महावीर की दृष्टि में	५.००
६१. मैं स्वयं भगवान हूँ	५.००
६२-६३. ध्यान का स्वरूप/रीति-नीति	४.००
६४. शाकाहार	५.००
६५. भगवान ऋषभदेव	४.००
६६. तीर्थंकर भगवान महावीर	३.००
६७. चैतन्य चमत्कार	४.००
६८. गोली का जवाब गाली से भी नहीं	२.००
६९. गोम्मटेश्वर बाहुबली	२.००
७०. वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	२.००
७१. अनेकान्त और स्याद्वाद	३.००
७२. शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर	६.००
७३. बिन्दु में सिन्धु	२.५०
७४. जिनवरस्य नयचक्रम	१०.००
७५. पश्चात्ताप खण्डकाव्य	१०.००
७६. बारह भावना एवं जिनेन्द्र वंदना	२.००
७७. कुंदकुंदशतक पद्यानुवाद	२.५०
७८. शुद्धात्मशतक पद्यानुवाद	१.००
७९. समयसार पद्यानुवाद	३.००
८०. योगसार पद्यानुवाद	१.००
८१. समयसार कलश पद्यानुवाद	३.००
८२. प्रवचनसार पद्यानुवाद	३.००
८३. द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद	१.००
८४. अष्टपाहुड़ पद्यानुवाद	३.००
८५. नियमसार पद्यानुवाद	२.५०
८६. नियमसार कलश पद्यानुवाद	५.००
८७. सिद्धभक्ति	१०.००
८८. अर्चना जेबी	१.५०
८९. कुंदकुंदशतक (अर्थ सहित)	५.००
९०. शुद्धात्मशतक (अर्थ सहित)	५.००
९१-९२. बालबोध पाठमाला भाग २ से ३	८.००
९३-९४. वीतराग विज्ञान पाठमाला १ से ३	१५.००
९५-९६. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १ से २	१२.००
९७. भगवान महावीर और उनकी जन्मभूमि	३.००
९८. समाधिमरण या सल्लेखना	५.००
९९. ये है मेरी नारियाँ	५.००

डॉ. भारिल्ल पर प्रकाशित साहित्य

१. तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल (अभिनंदन ग्रंथ)	१५०.००
२. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व – डॉ. महावीरप्रसाद जैन	३०.००
३. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल और उनका कथा साहित्य ह्न अरुणकुमार जैन	१२.००
४. डॉ. भारिल्ल के साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन – अखिल जैन बंसल	२५.००
५. गुरु की दृष्टि में शिष्य	५.००
६. मनीषियों की दृष्टि में : डॉ. भारिल्ल	५.००
७. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के साहित्य का समालोचनात्मक अनुशीलन ह्न सीमा जैन	२५.००

प्रकाशनाधीन

१. शिक्षाशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के शैक्षिक विचारों का समीक्षात्मक अध्ययन ह्न नीतू चौधरी
२. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व ह्न शिखरचन्द जैन
३. धर्म के दशलक्षण एक अनुशीलन ह्न ममता गुप्ता

प्रक्षाल पाठ

(दोहा)

भक्तिभाव से हम करें जिन प्रतिमा प्रक्षाल।
अरे विकारी भाव का हो जावे प्रक्षाल।। १ ।।

दिन का शुभ आरंभ हो चित्त रहे निर्भ्रान्त[1]।
प्रतिमा के प्रक्षाल से मन हो जावे शान्त।। २ ।।

(हरिगीतिका)

यद्यपि इस काल में अरहंत जिन उपलब्ध ना।
किन्तु हमारे भाग्य से जिनबिंब तो उपलब्ध हैं।।
जिनबिंब का प्रक्षाल पूजन और दर्शन भाव से।
जो भाग्यशाली करें प्रतिदिन भाव से अति चाव से।। ३ ।।

वे भाग्यशाली भव्य निज हित कार्य में नित रत रहें।
आपके गुणगान वे नित निरन्तर करते रहें।।
निज आतमा को जानकर वे शीघ्र ही भव पार हों।
निज आतमा का ध्यान धर वे भवजलधि से पार हों।। ४ ।।

जिसतरह समव-शरण में अरहंत जिन विद्यमान हैं।
और उनका इस जगत में उच्चतम स्थान है।।
व्यवहार होता जिसतरह का अरे उनके सामने।
बस उसतरह की विनय हो जिनमूर्तियों के सामने।। ५ ।।

१. जिसमें कोई सन्देह या भ्रम न हो।

यदि मूर्तियाँ हों प्रतिष्ठित स्थापना निक्षेप से।
अरहंत सम ही पूज्य हैं जिनमार्ग में व्यवहार से।।
अरे कृत्रिम-अकृत्रिम जिनबिंब जितने लोक में।
वे पूज्य हैं शत इन्द्र कर जिनशास्त्र के आलोक में।। ६ ।।

अति विनयपूर्वक बिंब का प्रक्षाल होना चाहिये।
अर दिवस में प्रत्येक दिन इकबार होना चाहिये।।
स्वस्थ तन-मन स्वच्छ पट अर सावधानी पूर्वक।
सद्भाव से ही पुरुष को प्रक्षाल करना चाहिये।। ७ ।।

प्रत्येक नर-नारी अरे पूजन करे प्रत्येक दिन।
प्रक्षाल तो बस एक जन इकबार ही दिन में करे।।
प्रक्षाल पूजन अंग ना प्रत्येक को अनिवार्य ना।
प्रक्षाल तो इक बिंब का इक बार होना चाहिये।। ८ ।।

छवि वीतरागी शान्त मुद्रा कही है जिनदेव की।
जिनमूर्ति की भी शान्त मुद्रा वीतरागी छवि कही।।
'जिनमूर्तियाँ हों मुस्कुराती' - कभी हो सकता नहीं।
और हंसना वीतरागी भाव हो सकता नहीं।। ९ ।।

जब वीतरागी जिनवरों का न्हवन हो सकता नहीं।
एवं दिगम्बर मुनिवरों का न्हवन हो सकता नहीं।।
जब मुनिवरों के मूलगुण में एक गुण अस्नान है।
तब प्रतिष्ठित मूर्तियों का न्हवन होवे किस तरह?।। १० ।।

बस इसलिये जिनमूर्तियों को स्वच्छ रखने के लिये।
और अपनी भावना को व्यक्त करने के लिये।।
अरे प्रासुक नीर से प्रक्षाल करना चाहिये।
न्हवन ना अभिषेक ना प्रक्षाल होना चाहिये।। ११ ।।

जिनबिंब का स्पर्श महिला वर्ग कर सकता नहीं।
जिनबिंब का प्रक्षाल महिला वर्ग कर सकता नहीं।।
दिगम्बर जिनबिंब से सम्पूर्ण महिला वर्ग को।
एक सीमा तक सुनिश्चित दूर रहना चाहिये।। १२ ।।

क्योंकि ये जिनबिंब जिनवरदेव के प्रतिबिंब हैं।
वीतरागी सर्वज्ञानी देव के ही बिंब हैं।।
उन बिंब का जिनबिंब का अति हर्ष से उल्लास से।
प्रक्षाल सब जन कर रहे अत्यन्त निर्मल भाव से।। १३ ।।

जिनबिंब का प्रक्षाल जो जन करें निर्मलभाव से।
और पूजन करें प्रतिदिन भाव से अति चाव से।।
जिन शास्त्र का स्वाध्याय एवं रहें संयमभाव से।
वे भव्यजन भवपार होंगे स्वयं के आधार से।। १४ ।।

(दोहा)

महाभाग्य हमने किया जिन प्रतिमा प्रक्षाल।
चरणों में जिनबिंब के सदा नवावें भाल।। १५ ।।

भक्तिभाव से जो करें जिन प्रतिमा प्रक्षाल।
निज आतम का ध्यान धर वे होवें भव पार।। १६ ।।

विनय पाठ

(दोहा)

अरहंतों को नमन कर नमूँ सिद्ध भगवान।
आचारज उवझाय अर सर्व साधु गुणखान।। १ ।।

मोक्ष मोक्ष के मार्ग में विद्यमान जो जीव।
यथायोग्य नम कर प्रभो वन्दन करूँ सदीव।। २ ।।

चौबीसों जिनराज की दिव्यध्वनि अनुसार।
ज्ञानिजनों ने जो लिखी वाणी विविधप्रकार।। ३ ।।

नय–प्रमाण से विविधविध कही तत्त्व की बात।
भविकजनों के लिये जो एकमात्र आधार।। ४ ।।

सब द्रव्यों के सभी गुण अर सामान्य–विशेष।
आज सभी को सहज ही हैं उपलब्ध अशेष।। ५ ।।

जिनवाणी उपलब्ध है उसे बतावनहार।
बहुत अधिक दुर्लभ नहीं उसके जाननहार।। ६ ।।

मोहनींद में जो पड़े नहीं कोई आधार।
साधर्मीजन कम नहीं उन्हें जगावनहार।। ७ ।।

सारा जग बेचेत है मोहनींद के द्वार।
किन्तु हमें उपलब्ध हैं मार्ग बतावनहार।। ८ ।।

महाभाग्य से प्राप्त हो देव–गुरु संयोग।
पर जिनवाणी मात की शरण सहज संयोग।। ९ ।।

उसके अध्ययन मनन से चिन्तन से निजतत्व।
जाना जाता सहज ही होता है सम्यक्त्व।। १० ।।

जिनवाणी के मर्म को अरे जानने योग्य।
ज्ञान प्रगट पर्याय में होवे सहज संयोग[1]।। ११ ।।

और कषायें मन्द हों भाव रहें निष्काम।
एक आतमा में लगे छोड़ हजारों काम[2]।। १२ ।।

देव-गुरु संयोग या जिनवाणी के योग।
तत्व श्रवण में मन लगे और न मन में रोग[3]।। १३ ।।

अरे क्षयोपशम विशुद्धि और देशना लब्धि।
जिसके ये तीनों बने उसे तत्त्व उपलब्धि।। १४ ।।

आतम में अति अधिक रुचि जब होवे सर्वांग।
विशेष तरह की योग्यता वह लब्धि प्रायोग्य।। १५ ।।

आतम का उपयोग जब आतम में रमजाय।
करणलब्धि है आतमा आतम माँहि समाय।। १६ ।।

करणलब्धि के अन्त में आतम अनुभव होय।
सम्यग्दर्शन प्राप्त हो मन रोमांचित होय।। १७ ।।

तीर्थंकर चौबीस ही हमें जगावनहार।
जागें आतम में लगें हो जावें भव पार।। १८ ।।

देव-शास्त्र-गुरु की कृपा से कटता संसार।
नमन करूँ इन सभी को भगवन् बारंबार।। १९ ।।

अरे हमारा आतमा आतम में रम जाय।
अन्य न कोई चाह मन आतम माहि समाय।। २० ।।

---

१. क्षयोपशम लब्धि २. विशुद्धि लब्धि ३. देशना लब्धि

पूजा पीठिका

ॐ जय जय जय! नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।

(वीर)

अरहंतों को सब सिद्धों को आचार्यों को करूँ प्रणाम।
उपाध्याय एवं त्रिलोक के सर्व साधुओं को अभिराम।। १ ।।

ॐ ह्रीं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः पुष्पांजलि क्षिपामि।

अरे चार मंगल हैं जग में अर्हत सिद्ध साहु मंगल।
और केवली कथित जगत में होता परम धरम मंगल।। २ ।।

और चार ही लोकोत्तम अर्हत सिद्ध साहु उत्तम।
और केवली कथित जगत में होता परम धरम उत्तम।। ३ ।।

अरे चार की शरणा जाऊँ अर्हत सिद्ध साहु शरणा।
और केवली कथित लोक में जाऊँ परम धरम शरणा।। ४ ।।

(हरिगीत)

परमेष्ठी सम शुद्धात्मा भी शरण है इस लोक में।
है परम मंगल परम उत्तम शरण भी इस लोक में।।
व्यवहार से परमेष्ठी परमार्थ से शुद्धात्मा।
की शरण में नित हम रहें जिनमार्ग के आलोक में।। ५ ।।

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा पुष्पांजलि क्षिपामि।

मंगल विधान

(वीर)

हो अपवित्र-पवित्र और सुस्थित हो अथवा दुःस्थित हो।
सब पापों से छूट जाय वह णमोकार को ध्यावे जो।। १ ।।

हो अपवित्र-पवित्र अधिक क्या किसी अवस्था में भी हो।
अन्दर-बाहर से पवित्र निज परमातम को ध्यावे जो।। २ ।।

अपराजित यह मंत्र सभी विघ्नों का परमविनाशक है।
सभी मंगलों में मंगल यह पावन पहला मंगल है।। ३ ।।

सब पापों का नाशक है यह महामंत्र मंगलमय है।
सभी मंगलों में यह अद्‌भुत पावन पहला मंगल है।। ४ ।।

'अर्हं' ये अक्षर परमेष्ठी परमब्रह्म के वाचक हैं।
सिद्धचक्र के बीज मनोहर नमस्कार हम करते हैं।। ५ ।।

अष्टकर्म से रहित मोक्षलक्ष्मी के सुखद निकेतन हैं।
सम्यक्त्वादि अष्टगुणों से सहित सिद्ध को नमते हैं।। ६ ।।

जिनवर की स्तुति करने से विघ्न विलय हो जाते हैं।
भूत डाकिनी एवं विषभय सभी विघ्न टर जाते हैं।। ७ ।।

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

जिनसहस्रनाम अर्घ्य

(वीर)

जल चन्दन अक्षत सुमन चरु, अर दीप धूप फल द्रव्यमयी।
अर्घ्य समर्पण करता हूँ मैं श्रीजिनवर आनन्दमयी।।

ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिनसहस्रनामेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

(वीर)

अनन्तचतुष्टय पद के धारी स्याद्वाद के नायक की।
पूजन करता नमस्कार कर तीन लोक परमेश्वर की।।
मूलसंघ के सम्यग्दृष्टि उनके सत्कर्मों के हेतु।
मेरे द्वारा कही जा रही यह जैनेन्द्रयज्ञविधि सेतु।। १ ।।

जिनपुंगव त्रैलोक्य गुरु की स्वस्ति हो कल्याणमयी।
जिनका रे सुस्थित स्वभाव महिमामय है कल्याणमयी।।
सहज प्रकाशमयी दृगज्योति मंगल मंगलदाता है।
स्वस्ति मंगल अद्भुत वैभव अति आनन्द प्रदाता है।। २ ।।

रे स्वभाव-परभाव सभी को करे प्रकाशित निर्मल ज्ञान।
अमृतमय वह ज्ञान मनोहर उछले अन्तर महिमावान।।
तीन लोक अर तीनकाल में विस्तृत है अति व्यापक है।
तीन लोक एवं त्रिकाल की पर्यायों का ज्ञायक है।। ३ ।।

यथायोग्य है द्रव्य शुद्धि पर भावशुद्धि पूरी चाहूँ।
अरे विविध आलंबन लेकर शुद्धभाव को अपनाऊँ।।
जो सचमुच भूतार्थ पुरुष हैं पावन हैं अतिपावन हैं।
उनकी पूजा करूँ ध्यान से जो अति ही मनभावन हैं।। ४ ।।

जिनकी केवलज्ञान ज्योति में सभी भाव भासित होते।
वे अर्हन् पुराण पुरुषोत्तम परम भाव भावित होते।।
उनकी केवलज्ञान बह्नि में मैं अपने पूरे मन से।
सभी पुण्य अर्पित करता हूँ निकला चाहूँ भव वन से।। ५ ।।

ॐ यज्ञप्रतिज्ञायै प्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

स्वस्ति मंगल पाठ

(चौपाई)

स्वस्ति श्री श्री ऋषभ जिनेश, स्वस्ति करें जिनवर अजितेश।
संभव करें असंभव द्वेष, अभिनन्दन दुख हरें अशेष।। १ ।।

सुमति प्रदाता सुमति जिनेश, पद्मप्रभ जिनवर पद्मेश।
जय सुपार्श्व पारस सम जान, चन्द्रप्रभ जिन चन्द्र समान।। २ ।।

सुविधिनाथ विधिनाशनहार, शीतल शीतलता दातार।
जय श्रेयांश श्रेय करतार, वासुपूज्य शिवसुख दातार।। ३ ।।

विमल विमल जीवन दातार, श्री अनन्त आनन्द अपार।
धर्म कहें संसार असार, शान्ति अनन्त शान्ति दातार।। ४ ।।

कुन्थु कुन्थु के रक्षणहार, अरजिन आनन्द के अवतार।
जीता है मन मल्लि जिनेश, मुनिसुव्रत व्रत धरें अशेष।। ५ ।।

नमि चरणों में नमें नरेश, जीता मन्मथ नेमि जिनेश।
पारस पारस से दातार, वीर अहिंसा के अवतार।। ६ ।।

(दोहा)

चौबीसों जिनराज ही मंगल मंगल हेतु।
स्वस्ति स्वरूप विराजहीं सबको मंगल देतु।। ७ ।।

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

परमर्षि स्वस्ति मंगल पाठ

(हरिगीत)

ज्ञानी तपस्वी मुनिवरों को ऋद्धियाँ उपलब्ध हों।
पर ऋद्धियों की सिद्धियों पर रंच न वे मुग्ध हों।।
वे तो निरन्तर लीन रहते आतमा के ज्ञान में।
आतमा के चिन्तवन निज आतमा के ध्यान में।। १ ।।

अरे चौसठ ऋद्धियों में प्रथम केवलज्ञान है।
दूसरी है मनःपर्यय तृतीय अवधीज्ञान है।।
इत्यादि चौसठ ऋद्धियाँ सब ज्ञान का विस्तार है।
रे ज्ञान के विस्तार का न आर है न पार है।। २ ।।

अन्य लौकिक सिद्धियाँ भी ऋद्धियों से प्राप्त हो।
पर मुनिवरों को उन सभी से नहीं कोई राग हो।।
वे तो स्वयं में जम गये वे तो स्वयं में रम गये।
सारे जगत से विमुख हो सद्ज्ञान में परिणम गये।। ३ ।।

आतमा के चिन्तवन में आतमा के ज्ञान में।
वे तो निरन्तर लगे रहते आतमा के ध्यान में।।
कैसे कहें उन मुनिवरों से तुम बताओ हे प्रभो।
निज आतमा को छोड़कर हे प्रभो हम पर ध्यान दो।। ४ ।।

नहीं कोई किसी का कुछ भी करे इस लोक में।
यह जानते हैं सभी आगम ज्ञान के आलोक में।।
सब जानते हैं समझते व्यवहार में यों बह रहे।
उन ऋद्धिधारी ऋषिवरों से प्रभो फिर भी कह रहे।। ५ ।।

रे ऋद्धिधारी मुनिवरो! कल्याण सब जग का करो।
अज्ञान मोहित जगत की दुर्गति मुनिवर परिहरो।।
यह जगत मिथ्यामार्ग तज सन्मार्ग में वर्तन करे।
जिनशास्त्र का स्वाध्याय कर निजज्ञान का मार्जन करे।। ६ ।।

अन्याय और अनीति छोड़े अभक्ष्य भक्षण न करे।
न्याय एवं नीति से सन्मार्ग पर आगे बढ़े।।
होवे अहिंसक आचरण आहार और विहार में।
सावधानी रखें हम व्यवहार में व्यापार में।। ७ ।।

(दोहा)

सभी संत मंगलमयी मंगल के आधार।
मल गाले मंगल करें करें मंगलाचार।। ८ ।।
सभी ऋद्धियों के धनी सभी दिगम्बर संत।
और कछु नहिं चाहिये चाहे भव का अंत।। ९ ।।

इति परमर्षि स्वस्तिमंगलविधानं पुष्पांजलि क्षिपेत्)

–●–

देव–शास्त्र–गुरु पूजन

(दोहा)

शुद्धब्रह्म परमात्मा, शब्दब्रह्म जिनवाणि।
शुद्धातम साधकदशा, नमौं जोड़ जुगपाणि।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(वीर)

आशा की प्यास बुझाने को, अबतक मृगतृष्णा में भटका।
जल समझ विषय–विष भोगों को, उनकी ममता में था अटका।।
लख सौम्यदृष्टि तेरी प्रभुवर, समता–रस पीने आया हूँ।
इस जल ने प्यास बुझाई ना, इसको लौटाने लाया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोधानल से जब जला हृदय, चन्दन ने कोई न काम किया।
तन को तो शान्त किया इसने, मन को न मगर आराम दिया।।
संसार–ताप से तप्त हृदय, सन्ताप मिटाने आया हूँ।
चरणों में चन्दन अर्पण कर, शीतलता पाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अभिमान किया अबतक जड़ पर, अक्षयनिधि को ना पहचाना।
मैं जड़ का हूँ जड़ मेरा है, यह सोच बना था मस्ताना।।
क्षत में विश्वास किया अबतक, अक्षत को प्रभुवर ना जाना।
अभिमान की आन मिटाने को, अक्षयनिधि तुम को पहिचाना।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

दिन–रात वासना में रहकर, मेरे मन ने प्रभु सुख माना।
पुरुषत्व गँवाया पर प्रभुवर, उसके छल को ना पहिचाना।।
माया ने डाला जाल प्रथम, कामुकता ने फिर बाँध लिया।
उसका प्रमाण यह पुष्प–बाण, लाकर के प्रभुवर भेंट किया।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पर पुद्गल का भक्षण करके, यह भूख मिटानी चाही थी।
इस नागिन से बचने को प्रभु, हर चीज बनाकर खाई थी।।
मिष्टान्न अनेक बनाये थे, दिन–रात भखे न मिटी प्रभुवर।
अब संयम–भाव जगाने को, लाया हूँ ये सब थाली भर।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पहले अज्ञान मिटाने को, दीपक था जग में उजियाला।
उससे न हुआ कुछ तब युग ने, बिजली का बल्ब जला डाला।।
प्रभु भेद–ज्ञान की आँख न थी, क्या कर सकती थी यह ज्वाला।
यह ज्ञान है कि अज्ञान कहो, तुमको भी दीप दिखा डाला।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ–कर्म कमाऊँ सुख होगा, अबतक मैंने यह माना था।
पाप कर्म को त्याग पुण्य को, चाह रहा अपनाना था।।
किन्तु समझ कर शत्रु कर्म को, आज जलाने आया हूँ।
लेकर दशांग यह धूप, कर्म की धूम उड़ाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्योः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

भोगों को अमृतफल जाना, विषयों में निश–दिन मस्त रहा।
उनके संग्रह में हे प्रभुवर! मैं व्यस्त–त्रस्त–अभ्यस्त रहा।।
शुद्धात्मप्रभा जो अनुपम फल, मैं उसे खोजने आया हूँ।
प्रभु सरस सुवासित ये जड़फल, मैं तुम्हें चढ़ाने लाया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

बहुमूल्य जगत का वैभव यह, क्या हमको सुखी बना सकता।
अरे पूर्णता पाने में, इसकी क्या है आवश्यकता।।
मैं स्वयं पूर्ण हूँ अपने में, प्रभु है अनर्घ्य मेरी माया।
बहुमूल्य द्रव्यमय अर्घ्य लिये, अर्पण के हेतु चला आया।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

समयसार जिनदेव हैं, जिन-प्रवचन जिनवाणि।
नियमसार निर्ग्रन्थ गुरु, करें कर्म की हानि।।

(वीरछन्द)

हे वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, तुमको ना अबतक पहिचाना।
अतएव पड़ रहे हैं प्रभुवर, चौरासी के चक्कर खाना।।
करुणानिधि तुमको समझ नाथ, भगवान भरोसे पड़ा रहा।
भरपूर सुखी कर दोगे तुम, यह सोचे सन्मुख खड़ा रहा।।
तुम वीतराग हो लीन स्वयं में, कभी न मैंने यह जाना।
तुम हो निरीह जग से कृत-कृत, इतना ना मैंने पहिचाना।।
प्रभु वीतराग की वाणी में, जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
जो होना है सो निश्चित है, केवलज्ञानी ने गाया है।।
उस पर तो श्रद्धा ला न सका, परिवर्तन का अभिमान किया।
बनकर पर का कर्त्ता अब तक, सत् का न प्रभो सम्मान किया।।
भगवान तुम्हारी वाणी में, जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
स्याद्वाद-नय, अनेकान्त-मय, समयसार समझाया है।।
उस पर तो ध्यान दिया न प्रभो, विकथा में समय गँवाया है।
शुद्धात्म-रुचि न हुई मन में, ना मन को उधर लगाया है।।

मैं समझ न पाया था अबतक, जिनवाणी किसको कहते हैं।
प्रभु वीतराग की वाणी में, कैसे क्या तत्त्व निकलते हैं।।
राग धर्ममय धर्म रागमय, अबतक ऐसा जाना था।
शुभ-कर्म कमाते सुख होगा, बस अबतक ऐसा माना था।।
पर आज समझ में आया है, कि वीतरागता धर्म अहा।
राग-भाव में धर्म मानना, जिनमत में मिथ्यात्व कहा।।
वीतरागता की पोषक ही, जिनवाणी कहलाती है।
यह है मुक्ति का मार्ग निरन्तर, हम को जो दिखलाती है।।
उस वाणी के अन्तर्तम को, जिन गुरुओं ने पहिचाना है।
उन गुरुवर्यों के चरणों में, मस्तक बस हमें झुकाना है।।
दिन-रात आत्मा का चिन्तन, मृदु सम्भाषण में वही कथन।
निर्वस्त्र दिगम्बर काया से भी, प्रकट हो रहा अन्तर्मन।।
निर्ग्रन्थ दिगम्बर सद्ज्ञानी, स्वातम में सदा विचरते जो।
ज्ञानी-ध्यानी-समरससानी, द्वादश विधि तप नित करते जो।।
चलते-फिरते सिद्धों-से गुरु चरणों में शीश झुकाते हैं।
हम चलें आपके कदमों पर, नित यही भावना भाते हैं।।
हो नमस्कार शुद्धातम को, हो नमस्कार जिनवर वाणी।
हो नमस्कार उन गुरुओं को, जिनकी चर्या समरससानी।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

(दोहा)

दर्शन दाता देव हैं, आगम सम्यग्ज्ञान।
गुरु चारित्र की खान हैं, मैं वंदौं धरि ध्यान।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

योगसार महामण्डल पूजन विधान

मंगलाचरण

समयसार के ही समान.....

(रोला)

समयसार के ही समान यह योगसार है।
योगसार में आत्मतत्व को समझाया है।।
रे स्वभाव से अपना आतम परमातम है।
विविध रूप में इसी बात को बतलाया है ।। १ ।।

जिनवर के आतम में अर अपने आतम में।
निश्चयनय से इनमें कोई भेद नहीं है।।
निज आतम को जानो, मानो निज आतम को।
निज आतम में जमो रमो जिनवर बन जाओ ।। २ ।।

इतना सहज सरल मारग जिनवर बनने का।
जो भी मोक्ष गये हैं, वे इस ही मारग से।
इतनी सुन्दर बात कही है योगसार में।
समयसार के ही समान यह योगसार है।। ३ ।।

मन्दिर में भगवान नहीं हैं मेरे भाई।
तन मन्दिर में रहें देव जिनदेव कहें यह।।
पोथी पुस्तक पढ़ने अर मठ में रहने से।
मोक्ष नहीं होता, होता है आत्म ध्यान से ।। ४ ।।

महाक्रान्तिकारी आलोचक क्रियाकाण्ड की।
साधक को सन्मार्ग दिखाने वाली रचना।।
निज आतम की ओर मोड़ने वाली अद्भुत।
जिनदर्शन में परमागम की अनुपम निधि है।। ५ ।।

योगसार पूजन

स्थापना

(रोला)

अपभ्रंश भाषा के मन मोहक दोहों में।
महाकवि जोइन्दुदेव की अद्भुत रचना।।
योगसार का नाम अरे अध्यात्म जगत में।
समयसार के ही समान जाना जाता है ।। १ ।।

आतम का माहात्म्य बताने वाली रचना।
भक्ति भाव से प्रेरित होकर अन्तर मन से।।
हम सब मिलकर इसे पूजते परमादर से।
और खुशी से पूजन अर विधान करते हैं ।। २ ।।

(दोहा)

योगसार को थाप कर सभी लोग सानन्द।
तन से मन से वचन से पूजे धरि आनन्द।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्रीयोगसाराय! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीयोगसाराय!! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ, ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीयोगसाराय!!! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।
(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(वीर)

जल

उज्ज्वल जल है सफल वस्तुओं को निर्मल कर देने में।
पर नहीं सफल हो सकता है आतम को निर्मल करने में।।
योगसार की अद्भुत महिमा निज आतम अपनाने में।
निज आतम की अद्भुत महिमा पूर्ण शान्ति सुख पाने में।। १ ।।

ॐ ह्रीं श्रीयोगसाराय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

चन्दन

शीतल चन्दन हो भले सफल गर्मी का ताप मिटाने में।
पर नहीं सफल हो सकता है भव का आताप मिटाने में।।
योगसार की अद्भुत महिमा निज आतम अपनाने में।
निज आतम की अद्भुत महिमा पूर्ण शान्ति सुख पाने में।। २ ।।[१]

ॐ ह्रीं श्रीयोगसाराय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

अक्षत

ये तन्दुल अक्षत के प्रतीक होने से अक्षत कहलाते।
पर आतम सचमुच अक्षत है जिनदेव हमें यह बतलाते।।
योगसार की अद्भुत महिमा निज आतम अपनाने में।
निज आतम की अद्भुत महिमा पूर्ण शान्ति सुख पाने में।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्रीयोगसाराय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

पुष्प

सुमनों की मनहर गंध जगत को भले सुगंधित करती हो।
पर अगंध आतम को वह कैसे सुरभित कर सकती है।।
योगसार की अद्भुत महिमा निज आतम अपनाने में।
निज आतम की अद्भुत महिमा पूर्ण शान्ति सुख पाने में।। ४ ।।

ॐ ह्रीं श्रीयोगसाराय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

नैवेद्य

अरे मिष्ठ नैवेद्य कदाचित् क्षुधा विनाशक हो जग में।
पर उसका उपयोग नहीं कुछ परमशुद्ध मुक्तीमग में।।
योगसार की अद्भुत महिमा निज आतम अपनाने में।
निज आतम की अद्भुत महिमा पूर्ण शान्ति सुख पाने में।। ५ ।।

ॐ ह्रीं श्रीयोगसाराय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

---

१. योगसार की अद्भुत महिमा इस बात में है कि यह अपने पाठकों को यह समझाने में सफल हुआ है कि एक आत्मा को अपनाने में ही सार है; क्योंकि अपने आत्मा के आश्रय से ही सच्चे सुख-शान्ति की प्राप्ति होती है।

दीप

सीमित तम को ही हरे दीप चाहे वह मणिरत्नों का हो।
स्व-पर प्रकाशक आत्मदीप द्योतित करता सारे जग को ।।
योगसार की अद्भुत महिमा निज आतम अपनाने में।
निज आतम की अद्भुत महिमा पूर्ण शान्ति सुख पाने में।। ६ ।।

ॐ ह्रीं श्रीयोगसाराय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

धूप

परम सुगंधित धूप जले तो धूमिल करती है जग को।
स्व-परप्रकाशक ज्ञानज्योति ज्योतित करती सारे जग को।।
योगसार की अद्भुत महिमा निज आतम अपनाने में।
निज आतम की अद्भुत महिमा पूर्ण शान्ति सुख पाने में।। ७ ।।

ॐ ह्रीं श्रीयोगसाराय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

फल

पुण्य-पाप के फल में अबतक चतुर्गति परिभ्रमण किया।
शुद्धभाव बिन मुझको अबतक अरे मोक्षफल नहीं मिला।।
योगसार की अद्भुत महिमा निज आतम अपनाने में।
निज आतम की अद्भुत महिमा पूर्ण शान्ति सुख पाने में।। ८ ।।

ॐ ह्रीं श्रीयोगसाराय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

अर्घ्य

शान्ति प्राप्त हो सुखमय जीवन नहीं और कुछ जाने दो।
अर्घ्य समर्पण करता हूँ मैं रे अनर्घ्यपद पाने को।।
योगसार की अद्भुत महिमा निज आतम अपनाने में।
निज आतम की अद्भुत महिमा पूर्ण शान्ति सुख पाने में।। ९ ।।

ॐ ह्रीं श्रीयोगसाराय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

अर्घ्यावली

(इस विधान में सर्वत्र मुनिराज योगीन्दुदेव के दोहों का डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल कृत पद्यानुवाद दिया गया है।)

(दोहा)

योगसार जिनशास्त्र की पूजन की सानन्द।
अब अर्घ्यावलि में सुनो योगसार के छन्द।।

।। इति पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।।

अब, सर्वप्रथम मुनिराज योगीन्दुदेव सिद्ध और अरिहंत परमेष्ठी को नमस्कार करके ग्रन्थ लिखने की प्रतिज्ञा करते हैं –

(हरिगीत)

सब कर्ममल का नाशकर अर प्राप्त कर निज–आतमा।
जो लीन निर्मल ध्यान में नमकर निकल परमातमा।। १ ।।
सब नाशकर घनघाति अरि अरिहंत पद को पा लिया।
कर नमन उन जिनदेव को यह काव्यपथ अपना लिया।। २ ।।

ॐ ह्रीं सिद्ध–अरिहंतनमनपूर्वकग्रन्थप्रतिज्ञानिरूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं.. ।। १ ।।

अब, ग्रन्थ लिखने के प्रयोजन को बताते हैं –

(हरिगीत)

है मोक्ष की अभिलाष अर भयभीत हैं संसार से।
है समर्पित यह देशना उन भव्य जीवों के लिए।। ३ ।।

ॐ ह्रीं ग्रन्थप्रयोजननिरूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २ ।।

(दूहा)

णिम्मलझाणपरिट्ठिया कम्मकलंक डहेवि।
अप्पा लद्धउ जेण परु ते परमप्प णवेवि।। १ ।।
घाइचउक्कहँ किउ विलउ णंत-चउक्क-पदिट्ठु।
तहिं जिणइंदहँ पय णविवि अक्खमि कव्वु सुइट्ठु।। २ ।।
संसारहँ भयभीयहँ, मोक्खहँ लालसियाहँ।
अप्पा-संबोहण-कयइ, कय दोहा एक्कमणाहँ।। ३ ।।

अब, मिथ्यात्व के कारण ही दुःख है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

अनन्त है संसार–सागर जीव काल अनादि हैं।
पर सुख नहीं, बस दुःख पाया मोह–मोहित जीव ने।। ४ ।।

ॐ ह्रीं दुःखकारणनिरूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ३।।

अब, परमसुख की प्राप्ति का उपाय बताते हैं –

(हरिगीत)

भयभीत है यदि चर्तुगति से त्याग दे परभाव को।
परमातमा का ध्यान कर तो परमसुख को प्राप्त हो।। ५ ।।

ॐ ह्रीं परमसुखप्राप्ति–उपायनिरूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. ।। ४।।

अब, आत्मा के तीन भेद बताते हैं –

(हरिगीत)

बहिरातमापन त्याग जो बन जाय अन्तर–आतमा।
ध्यावे सदा परमातमा बन जाय वह परमातमा।। ६ ।।

ॐ ह्रीं आत्मभेदनिरूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ५।।

अब, बहिरात्मा का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

मिथ्यात्वमोहित जीव जो वह स्व–पर को नहिं जानता।
संसार–सागर में भ्रमे दृगमूढ़ वह बहिरातमा।। ७ ।।

ॐ ह्रीं बहिरात्मस्वरूपप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ६।।

(दूहा)

कालु अणाइ अणाइ जिउ, भव-सायरु जि अणंतु।
मिच्छा-दंसण-मोहियउ, णवि सुह दुक्ख जि पत्तु।। ४ ।।
जइ बीहउ चउ-गइ-गमण, तो पर-भाव चएहि।
अप्पा झायहि णिम्मलउ, जिम सिव-सुक्ख लहेहि।। ५ ।।
ति-पयारो अप्पा मुणहि, परु अंतरु बहिरप्पु।
पर झायहि अंतर-सहिउ, बाहिरु चयहि णिभंतु।। ६ ।।
मिच्छा-दंसण-मोहियउ, परु अप्पा ण मुणेइ।
सो बहिरप्पा जिण-भणिउ, पुण संसार भमेइ।। ७ ।।

अब, अन्तरात्मा का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

जो स्व–पर को पहिचानता अर त्यागता परभाव को।
वह आत्मज्ञानी महापण्डित शीघ्र ही भवपार हो ।। ८ ।।

ॐ ह्रीं अन्तरात्मस्वरूपप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।। ७।।

अब, परमात्मा का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

जो शुद्ध शिव जिन बुद्ध विष्णु निकल निर्मल शान्त है।
बस है वही परमातमा जिनवर–कथन निर्भ्रान्त है ।। ९ ।।

ॐ ह्रीं परमात्मस्वरूपप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।। ८।।

अब, पुनः बहिरात्मा के स्वरूप पर प्रकाश डालते हैं –

(हरिगीत)

जिनवर कहें 'देहादि पर' जो उन्हें ही निज मानता।
संसार–सागर में भ्रमें वह आतमा बहिरातमा ।। १० ।।
'देहादि पर' जिनवर कहें ना हो सकें वे आतमा।
यह जानकर तू मान ले निज आतमा को आतमा ।। ११ ।।

(दूहा)

जो परियाणइ अप्पु परु, जो परभाव चएइ।
सो पंडिउ अप्पा मुणहु, सो संसारु मुएइ ।। ८ ।।
णिम्मलु णिक्कलु सुद्धु जिणु, विण्हु बुद्धु सिवु संतु।
सो परमप्पा जिण-भणिउ, एहउ जाणि णिभंतु ।। ९ ।।
देहादिउ जे पर कहिय, ते अप्पाणु मुणेइ।
सो बहिरप्पा जिण-भणिउ, पुणु संसारु भमेइ ।। १० ।।
देहादिउ जे पर कहिय, ते अप्पाणु ण होहि।
इउ जाणेविणु जीव तुहुँ, अप्पा अप्प मुणेहि ।। ११ ।।

तू पायगा निर्वाण माने आतमा को आतमा।
पर भवभ्रमण हो यदी जाने देह को ही आतमा।। १२ ।।

ॐ ह्रीं बहिरात्मस्वरूपप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ९।।

अब, इच्छारहित तप करने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

आतमा को जानकर इच्छारहित यदि तप करे।
तो परमगति को प्राप्त हो संसार में घूमे नहीं।। १३ ।।

ॐ ह्रीं इच्छारहिततपप्रेरक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १०।।

अब, परिणाम से ही बंध और परिणाम से ही मोक्ष होता है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

परिणाम से ही बंध है अर मोक्ष भी परिणाम से।
यह जानकर हे भव्यजन ! परिणाम को पहिचानिये।। १४ ।।

ॐ ह्रीं परिणामेणैव बंधःपरिणामेणैवमोक्षः इतिप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ११।।

अब, मोक्षमार्ग में पुण्य की निरर्थकता को बताते हैं –

(हरिगीत)

निज आतमा जाने नहीं अर पुण्य ही करता रहे।
तो सिद्धसुख पावे नहीं संसार में फिरता रहे।। १५ ।।

(दूहा)

अप्पा अप्पउ जइ मुणहि, तो णिव्वाणु लहेहि।
पर अप्पा जइ मुणहि तुहुँ, तो संसारु भमेहि।। १२।।
इच्छा-रहियउ तव करहि, अप्पा अप्पु मुणेहि।
तो लहु पावहि परम-गई, फुडु संसारु ण एहि।। १३।।
परिणामे बंधु जि कहिउ, मोक्ख वि तह जि वियाणि।
इउ जाणेविणु जीव तुहुँ, तहभाव हु परियाणि।। १४।।
अह पुणु अप्पा ण वि मुणहि, पुण्णु वि करहि असेसु।
तउ वि णु पावहि सिद्ध-सुहु, पुणु संसारु भमेसु।। १५।।

निज आतमा को जानना ही एक मुक्तिमार्ग है।
कोइ अन्य कारण है नहीं हे योगिजन! पहिचान लो।। १६।।

ॐ ह्रीं मोक्षमार्गे पुण्यनिरर्थकत्वप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि.. ।। १२।।

अब, गुणस्थान और मार्गणास्थान के भेदों से पार आत्मा को जानने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

मार्गणा गुणथान का सब कथन है व्यवहार से।
यदि चाहते परमेष्ठिपद तो आतमा को जान लो।। १७।।

ॐ ह्रीं गुणस्थान-मार्गणास्थानभेदरहित आत्मज्ञानप्रेरक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं.।। १३।।

अब, गृहस्थ जीव भी मोक्षमार्गी हैं, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

घर में रहें जो किन्तु हेयाहेय को पहिचानते।
वे शीघ्र पावें मुक्तिपद, जिनदेव को जो ध्यावते।। १८।।

तुम करो चिन्तन स्मरण अर ध्यान भी जिनदेव का।
बस एक क्षण में परमपद की प्राप्ति हो इस कार्य से।। १९ ।।

ॐ ह्रीं गृहस्थोऽपिमोक्षमार्गी-इतिप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं...।। १४।।

(दूहा)

अप्पा-दंसणु एक्कु परु, अण्णु ण किं पि वियाणि।
मोक्खहँ कारण जोइया, णिच्छइँ एहउ जाणि।। १६।।
मग्गण-गुणठाणइ कहिय, विवहारेण वि दिट्ठि।
णिच्छय-णइँ अप्पा मुणहि, जिम पावहु परमेट्ठि।। १७।।
गिहि-वावार-परिट्ठिया, हेयाहेउ मुणंति।
अणुदिणु झायहिं देउ जिणु, लहु णिव्वाणु लहंति।। १८।।
जिणु सुमिरहु जिणु चिंतवहु, जिणु झायहु सुमणेण।
सो झायंतहँ परम-पउ, लब्भइ एक्क-खणेण।। १९।।

अब, जिनदेव और शुद्धात्मा एक ही हैं, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

मोक्षमग में योगिजन यह बात निश्चय जानिये।
जिनदेव अर शुद्धातमा में भेद कुछ भी है नहीं।। २०।।

सिद्धान्त का यह सार माया छोड़ योगी जान लो।
जिनदेव अर शुद्धातमा में कोई अन्तर है नहीं।। २१।।

मम आतमा परमातमा परमातमा ही आतमा।
हे योगिजन ! यह जानकर कोई विकल्प करो नहीं।। २२।।

ॐ ह्रीं जिनदेव-शुद्धात्मनो एकत्वप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं..।। १५।।

अब, लोकाकाशप्रमाण आत्मा को जानने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

परिमाण लोकाकाश के जिसके प्रदेश असंख्य हैं।
बस उसे जाने आतमा निर्वाण पावे शीघ्र ही।। २३ ।।
व्यवहार देहप्रमाण अर परमार्थ लोकप्रमाण है।
जो जानते इस भाँति वे निर्वाण पावें शीघ्र ही।। २४ ।।

ॐ ह्रीं लोकाकाशप्रमाण-आत्मज्ञानप्रेरक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं..।। १६।।

(दूहा)

सुद्धप्पा अरु जिणवरहँ, भेउ म किं पि वियाणि।
मोक्खहँ कारण जोइया, णिच्छइँ एउ वियाणि।। २० ।।
जो जिणु सो अप्पा मुणहु, इहु सिद्धंतहँ सारु।
इउ जाणेविणु जोइयहो, छंडहु मायाचारु।। २१ ।।
जो परमप्पा सो जि हउँ, जो हउँ सो परमप्पु।
इउ जाणेविणु जोइया, अण्णु म करहु वियप्पु।। २२ ।।
सुद्ध-पएसहँ पूरियउ, लोयायास-पमाणु।
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु, पावहु लहु णिव्वाणु।। २३ ।।
णिच्छइँ लोय-पमाणु मुणि, ववहारेँ सुसरीरु।
एहउ अप्प-सहाउ मुणि, लहु पावहि भव-तीरु।। २४ ।।

अब, सम्यक्त्वप्राप्ति की दुर्लभता बताते हैं –

(हरिगीत)

योनि लाख चुरासि में बीता अनन्ता काल है।
पाया नहीं सम्यक्त्व फिर भी बात यह निर्भ्रान्त है।। २५ ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्त्वदुर्लभत्वप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १७।।

अब, आत्मस्वभाव की भावना भाने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

यदि चाहते हो मुक्त होना चेतनामय शुद्ध जिन।
अर बुद्ध केवलज्ञानमय निज आतमा को जान लो।। २६ ।।

जब तक न भावे जीव निर्मल आतमा की भावना।
तब तक न पावे मुक्ति रे, चाहे जहाँ तुम जाव ना।। २७ ।।

ॐ ह्रीं आत्मस्वभावभावनाप्रेरक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १८।।

अब, आत्मा ही ध्यान करने योग्य है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

त्रैलोक्य के जो ध्येय वे जिनदेव ही हैं आतमा।
परमार्थ का यह कथन है निर्भ्रान्त यह तुम जान लो।। २८ ।।

ॐ ह्रीं आत्मध्यानोपादेयत्वप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १९।।

(दूहा)

चउरासी लक्खहिँ फिरिउ, कालु अणाइ अणंतु।
पर सम्मत्तु ण लद्धु जिय, एहउ जाणि णिभंतु।। २५ ।।
सुद्ध सचेयणु बुद्धु जिणु, केवल-णाण-सहाउ।
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु, जइ चाहहु सिव-लाहु।। २६ ।।
जाम ण भावहि जीव तुहुँ, णिम्मल अप्प-सहाउ।
ताम ण लब्भइ सिव-गमणु, जहिँ भावइ तहिँ जाउ।। २७ ।।
जो तइलोयहँ झेउ जिणु, सो अप्पा णिरु वुत्तु।
णिच्छय-णइँ एमइ भणिउ, एहउ जाणि णिभंतु।। २८ ।।

अब, आत्मज्ञान बिना व्रत, शील, संयम आदि कुछ भी कार्यकारी नहीं हैं, यह बताते हैं – (हरिगीत)

जब तक न जाने जीव परमपवित्र केवल आतमा।
तब तक न व्रत तप शील संयम मुक्ति के कारण कहे।। २९ ।।
जिनदेव का है कथन यह व्रत शील से संयुक्त हो।
जो आतमा को जानता वह सिद्धसुख को प्राप्त हो।। ३० ।।
जब तक न जाने जीव परमपवित्र केवल आतमा।
तब तक सभी व्रत शील संयम कार्यकारी हों नहीं।। ३१ ।।

ॐ ह्रीं आत्मज्ञानरहित व्रत-शील-संयमादिनिरर्थकत्वप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २०।।

अब, पाप-पुण्य से पार मुक्ति के उपाय को बताते हैं –

(हरिगीत)

पुण्य से हो स्वर्ग नर्क निवास होवे पाप से।
पर मुक्ति-रमणी प्राप्त होती आत्मा के ध्यान से।। ३२ ।।

ॐ ह्रीं पुण्य-पापरहितमोक्षमार्गनिरूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि.।। २१।।

अब, व्यवहार और निश्चय मोक्षमार्ग बताते हैं –

(हरिगीत)

व्रत शील संयम तप सभी हैं मुक्तिमग व्यवहार से।
त्रैलोक्य में जो सार है वह आतमा परमार्थ से।। ३३ ।।

(दूहा)

वय-तव-संजम-मूलगुण, मूढहँ मोक्ख ण वुत्तु।
जाव ण जाणइ इक्क पर, सुद्धउ भाउ पवित्तु।। २९ ।।
जइ णिम्मल अप्पा मुणइ, वय-संजम-संजुत्तु।
तो लहु पावइ सिद्धि-सुह, इउ जिणणाहहँ उत्तु।। ३० ।।
वउ तउ संजमु सीलु जिय, ए सव्वइँ अकयत्थु।
जाव ण जाणइ इक्क परु, सुद्धउ भाउ पवित्तु।। ३१ ।।
पुण्णिं पावइ सग्ग जिउ, पावएँ णरय-णिवासु।
बे छंडिवि अप्पा मुणइ, तो लब्भइ सिववासु।। ३२ ।।
वउ तउ संजमु सीलु जिय, इउ सव्वइँ ववहारु।
मोक्खहँ कारणु एक्कु मुणि, जो तइलोयहँ सारु।। ३३ ।।

परभाव को परित्याग कर अपनत्व आतम में करे।
जिनदेव ने ऐसा कहा शिवपुर गमन वह नर करे।। ३४ ।।

ॐ ह्रीं व्यवहार-निश्चयमोक्षमार्गप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २२।।

अब, व्यवहार मोक्षमार्ग को पहिचानकर निश्चयमोक्षमार्ग पर आरूढ़ होने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

व्यवहार से जिनदेव ने छह द्रव्य तत्त्वारथ कहे।
हे भव्यजन ! तुम विधीपूर्वक उन्हें भी पहिचान लो।। ३५ ।।

है आतमा बस एक चेतन आतमा ही सार है।
बस और सब हैं अचेतन यह जान मुनिजन शिव लहैं।। ३६ ।।

जिनदेव ने ऐसा कहा निज आतमा को जान लो।
यदि छोड़कर व्यवहार सब तो शीघ्र ही भवपार हो।। ३७ ।।

ॐ ह्रीं व्यवहारमोक्षमार्गपूर्वकनिश्चयमोक्षमार्गप्रेरक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि.।। २३।।

अब, जीव-अजीव के भेदपूर्वक केवल ज्ञानस्वभावी आत्मा को जानने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

जो जीव और अजीव के गुणभेद को पहिचानता।
है वही ज्ञानी जीव वह ही मोक्ष का कारण कहा।। ३८ ।।

(दूहा)

अप्पा अप्पइँ जो मुणइ, जो परभाउ चएइ।
सो पावइ सिवपुरि-गमणु, जिणवरु एम भणेइ।। ३४ ।।
छह दव्वइँ जे जिण-कहिय, णव पयत्थ जे तत्त।
विवहारेण य उत्तिया, ते जाणियहि पयत्त।। ३५ ।।
सव्व अचेयण जाणि जिय, एक्क सचेयणु सारु।
जो जाणेविणु परम-मुणि, लहु पावइ भवपारु।। ३६ ।।
जइ णिम्मलु अप्पा मुणहि, छंडिवि सहु ववहारु।
जिण-सामिउ एमइ भणइ, लहु पावइ भवपारु।। ३७ ।।
जीवाजीवहँ भेउ, जो जाणइ तिं जाणियउ।
मोक्खहँ कारण एउ, भणइ जोइ जोइहिँ भणिउँ।। ३८ ।।

यदि चाहते हो मोक्षसुख तो योगियों का कथन यह।
हे जीव! केवल ज्ञानमय निज आतमा को जान लो।। ३९ ।।

ॐ ह्रीं जीव-अजीवभेदज्ञानपूर्वक आत्मज्ञानप्रेरक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि.।। २४।।

अब, सर्वत्र आत्मा ही है, यह बताते हैं -

(हरिगीत)

सुसमाधि अर्चन मित्रता अर कलह एवं वंचना।
हम करें किसके साथ किसकी हैं सभी जब आतमा।। ४० ।।

ॐ ह्रीं आत्मैव सर्वत्र इतिप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २५।।

अब, भवभ्रमण से मुक्त होने का उपाय बताते हैं -

(हरिगीत)

गुरुकृपा से जब तलक आतमदेव को नहिं जानता।
तब तक भ्रमे कुत्तीर्थ में अर ना तजे जन धूर्तता।। ४१ ।।
श्रुतकेवली ने यह कहा ना देव मन्दिर तीर्थ में।
बस देह-देवल में रहे जिनदेव निश्चय जानिये।। ४२ ।।
जिनदेव तनमन्दिर रहें जन मन्दिरों में खोजते।
हँसी आती है कि मानो सिद्ध भोजन खोजते।। ४३ ।।

ॐ ह्रीं भवभ्रमणमुक्त्युपायनिरूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि.।। २६।।

(दूहा)

केवल णाणसहाउ, सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ।
जइ चाहहि सिव-लाहु, भणइ जोइ जोइहिँ भणिउँ।। ३९ ।।

(चौपई)

को सुसमाहि करउ को अंचउ, छोपु-अछोपु करिवि को वंचउ।
हल सहि कलहु केण समाणउ, जहिँ कहिँ जोवउ तहिँ अप्पाणउ।। ४० ।।

(दूहा)

ताम कुतित्थइँ परिभमइ, धुत्तिम ताम करेइ।
गुरुहु पसाएँ जाम णवि, अप्पा-देउ मुणेइ।। ४१ ।।
तित्थइँ देवलि देउ णवि, इम सुइकेवलि-वुत्तु।
देहा-देवलि देउ जिणु, एहउ जाणि णिरुत्तु।। ४२ ।।
देहा-देवलि देउ जिणु, जणु देवलिहिँ णिएइ।
हासउ महु पडिहाइ इहु, सिद्धे भिक्खव भमेइ।। ४३ ।।

अब, देव तो देह देवालय में विराजमान, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

देव देवल में नहीं रे मूढ! ना चित्राम में।
वे देह–देवल में रहें सम चित्त से यह जान ले।। ४४ ।।
सारा जगत यह कहे श्री जिनदेव देवल में रहें।
पर विरल ज्ञानी जन कहें कि देह–देवल में रहें।। ४५ ।।

ॐ ह्रीं देह–देवालयस्थ शुद्धात्मप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. ।। २७।।

अब, धर्मरस का पान करने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

यदि जरा भी भय है तुझे इस जरा एवं मरण से।
तो धर्मरस का पान कर हो जाय अजरा–अमर तू।। ४६ ।।

ॐ ह्रीं धर्मरसपानप्रेरक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २८।।

अब, बाह्यक्रियाकाण्ड से धर्म नहीं होता यह बताते हैं –

(हरिगीत)

पोथी पढ़े से धर्म ना ना धर्म मठ के वास से।
ना धर्म मस्तक लुंच से ना धर्म पीछी ग्रहण से।। ४७ ।।

ॐ ह्रीं बाह्यक्रियाकाण्डधर्मनिषेधक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २९।।

(दूहा)

मूढा देवलि देउ णवि, णवि सिलि लिप्पइ चित्ति।
देहा-देवलि देउ जिणु, सो बुज्झहि समचित्ति।। ४४ ।।
तित्थइ देउलि देउ जिणु, सव्वु वि कोइ भणेइ।
देहा-देउलि जो मुणइ, सो बुहु को वि हवेइ।। ४५ ।।
जइ जर-मरण-करालियउ, तो जिय धम्म करेहि।
धम्म-रसायणु पियहि तुहुँ, जिम अजरामर होहि।। ४६ ।।
धम्मु ण पढ़ियइँ होइ, धम्मु ण पोत्था-पिच्छियइँ।
धम्मु ण मढिय-पएसि, धम्मु ण मत्था-लुंचियइँ।। ४७ ।।

अब, पंचमगति की प्राप्ति का उपाय बताते हैं –

(हरिगीत)

परिहार कर रुष–राग आतम में बसे जो आतमा।
बस पायगा पंचम गति वह आतमा धर्मातमा।। ४८ ।।

ॐ ह्रीं पंचमगतिप्राप्ति–उपायप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ३०।।

अब, अज्ञानी जीव के मन को आत्मा में रमने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

आयू गले मन ना गले ना गले आशा जीव की।
मोह स्फुरे हित ना स्फुरे यह दुर्गति इस जीव की।। ४९ ।।
ज्यों मन रमे विषयानि में यदि आतमा में त्यों रमे।
योगी कहें हे योगिजन! तो शीघ्र जावे मोक्ष में।। ५० ।।

ॐ ह्रीं आत्मरमणप्रेरक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ३१।।

अब, मन को वश में करने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

'जरजरित है नरक सम यह देह' ह्न ऐसा जानकर।
यदि करो आतम भावना तो शीघ्र ही भव पार हो।। ५१ ।।

ॐ ह्रीं शरीरभिन्न–आत्मभावनाप्रेरक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ३२।।

(दूहा)

राय-रोस बे परिहरिवि, जो अप्पाणि वसेइ।
सो धम्मु वि जिण-उत्तियउ, जो पंचम-गइ णेइ।। ४८ ।।
आउ गलइ णवि मणु गलइ, णवि आसा हु गलेइ।
मोहु फुरइ ण वि अप्पहिउ, इम संसार भमेइ।। ४९ ।।
जेहउ मणु विसयहँ रमइ, तिमु जइ अप्प मुणेइ।
जोइउ भणइ हो जोइयहु, लहु णिव्वाणु लहेइ।। ५० ।।
जेहउ जज्जरु णरय-घरु, तेहउ बुज्झि सरीरु।
अप्पा भावहि णिम्मलउ, लहु पावहि भवतीरु।। ५१ ।।

अब, यह जीव किन कारणों से निर्वाण प्राप्त नहीं करता, वह बताते हैं –

(हरिगीत)

धंधे पड़ा सारा जगत निज आतमा जाने नहीं।
बस इसलिए ही जीव यह निर्वाण को पाता नहीं।। ५२ ।।
शास्त्र पढ़ता जीव जड़ पर आतमा जाने नहीं।
बस इसलिए ही जीव यह निर्वाण को पाता नहीं।। ५३ ।।

ॐ ह्रीं निर्वाणाभावकारणप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ३३।।

अब, आत्मा को जानने वाले ही संसार से पार होते हैं, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

परतंत्रता मन–इन्द्रियों की जाय फिर क्या पूछना।
रुक जाय राग–द्वेष तो हो उदित आतम भावना।। ५४ ।।
जीव पुद्गल भिन्न हैं अर भिन्न सब व्यवहार है।
यदि तजे पुद्गल गहे आतम सहज ही भवपार है।। ५५ ।।
ना जानते–पहिचानते निज आतमा गहराई से।
जिनवर कहें संसार–सागर पार वे होते नहीं।। ५६ ।।

ॐ ह्रीं आत्मज्ञानप्रेरक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ३४।।

(दूहा)

धंधइ पडियउ सयल जगि, णवि अप्पा हु मुणंति।
तहिँ कारणि ए जीव फुडु, ण हु णिव्वाणु लहंति।। ५२ ।।
सत्थ पढंतहँ ते वि जड, अप्पा जे ण मुणंति।
तहिँ कारणि ए जीव फुडु, ण हु णिव्वाणु लहंति।। ५३ ।।
मणु-इंदिहि वि छोडियइ, बुहु पुच्छियइ ण कोइ।
रायहँ पसरु णिवारियइ, सहज उपज्जइ सोइ।। ५४ ।।
पुग्गलु अण्णु व अण्णु जिउ, अण्णु वि सहु ववहारु।
चयहि वि पुग्गलु गहहि जिउ, लहु पावहि भवपारु।। ५५ ।।
जे णवि मण्णहिँ जीव फुडु, जे णवि जीउ मुणंति।
ते जिण-णाहहँ उत्तिया, णउ संसार मुचंति।। ५६ ।।

अब, नौ दृष्टान्त पूर्वक जीव का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

रतन दीपक सूर्य घी दधि दूध पत्थर अर दहन।
सुवर्ण रूपा स्फटिक मणि से जानिये निज आत्मन्।। ५७ ।।

ॐ ह्रीं दृष्टान्तपुरस्सर-जीवस्वरूपनिरूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि...।। ३५।।

अब, आत्मा को आकाश से भिन्न बताकर आत्मध्यान की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

शून्य नभ सम भिन्न जाने देह को जो आतमा।
सर्वज्ञता को प्राप्त हो अर शीघ्र पावे आतमा।। ५८ ।।
आकाश सम ही शुद्ध है निज आतमा परमातमा।
आकाश है जड़ किन्तु चेतन तत्त्व तेरा आतमा।। ५९ ।।
नासाग्र दृष्टिवंत हो देखें अदेही जीव को।
वे जनम धारण ना करें ना पियें जननी-क्षीर को।। ६० ।।

ॐ ह्रीं आकाशसम-आत्मध्यानप्रेरक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ३६।।

अब, आत्मा को स्वशरीरप्रमाण अशरीरी बताकर, उसको जानने का फल बताते हैं – (हरिगीत)

अशरीर को सुशरीर अर इस देह को जड़ जान लो।
सब छोड़ मिथ्या-मोह इस जड़ देह को पर मान लो।। ६१ ।।

(दूहा)

रयण दीउ दिणयर दहिउ, दुद्धु घीव पाहाणु।
सुण्णउ रुउ फलिहउ अगिणि, णव दिट्ठंता जाणु।। ५७ ।।
देहादिउ जो परु मुणइ, जेहउ सुण्णु अयासु।
सो लहु पावइ बंभु परु, केवलु करइ पयासु।। ५८ ।।
जेहउ सुद्ध अयासु जिय, तेहउ अप्पा वुत्तु।
आयासु वि जडु जाणि जिय, अप्पा चेयणुवंतु।। ५९ ।।
णासग्गिँ अब्भिंतरहँ, जे जोवहिँ असरीरु।
बाहुडि जम्मि ण संभवहिँ, पिवहिँ ण जणणी-खीरु।। ६० ।।
असरीरु वि सुसरीरु मुणि, इहु सरीरु जडु जाणि।
मिच्छा-मोहु परिच्चयहि, मुत्ति णियं वि ण माणि।। ६१ ।।

अपनत्व आतम में रहे तो कौन–सा फल ना मिले?
बस होय केवलज्ञान एवं अखय आनँद परिणमे।। ६२ ।।

परभाव को परित्याग जो अपनत्व आतम में करें।
वे लहें केवलज्ञान अर संसार–सागर परिहरें।। ६३ ।।

ॐ ह्रीं स्वशरीरप्रमाण–आत्मज्ञानफलप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि...।। ३७।।

अब, आत्मतत्त्व की प्राप्ति की दुर्लभता को बताते हैं –

(हरिगीत)

हैं धन्य वे भव–अन्त बुध परभाव जो परित्यागते।
जो लोक और अलोक ज्ञायक आतमा को जानते।। ६४ ।।

सागार या अनगार हों पर आतमा में वास हो।
जिनवर कहें अतिशीघ्र ही वे परमसुख को प्राप्त हों।। ६५ ।।

विरले पुरुष ही जानते निज तत्त्व को विरले सुनें।
विरले करें निज ध्यान अर विरले पुरुष धारण करें।। ६६ ।।

ॐ ह्रीं आत्मतत्वदुर्लभत्वनिरूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ३८।।

(दूहा)

अप्पइँ अप्पु मुणंतयहँ, किं णेहा फलु होइ।
केवल-णाणु वि परिणवइ, सासय-सुक्खु लहेइ।। ६२ ।।
जे परभाव चएवि मुणि, अप्पा अप्प मुणंति।
केवल-णाण-सरूव लइ, ते संसारु मुचंति।। ६३ ।।
धण्णा ते भवयंत बुह, जे परभाव चयंति।
लोयालोय-पयासयरु, अप्पा विमल मुणंति।। ६४ ।।
सागारु वि णागारु कु वि, जो अप्पाणि वसेइ।
सो लहु पावइ सिद्धि-सुहु, जिणवरु एम भणेइ।। ६५ ।।
विरला जाणहिँ तत्तु बुह, विरला णिसुणहिँ तत्तु।
विरला झायहिँ तत्तु जिय, विरला धारहिँ तत्तु।। ६६ ।।

अब, आत्मा ही परमशरण है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

'सुख–दुःख के हैं हेतु परिजन किन्तु वे परमार्थ से।
मेरे नहीं' – यह सोचने से मुक्त हों भवभार से।। ६७ ।।
नागेन्द्र इन्द्र नरेन्द्र भी ना आतमा को शरण दें।
यह जानकर हि मुनीन्द्रजन निज आतमा शरणा गहें।। ६८ ।।

ॐ ह्रीं आत्मैव परमशरण इतिप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ३९।।

अब, आत्मा के एकत्व को बताकर आत्मध्यान की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

जन्मे–मरे सुख–दुःख भोगे नरक जावे एकला।
अरे! मुक्तीमहल में भी जायेगा जिय एकला।। ६९ ।।
यदि एकला है जीव तो परभाव सब परित्याग कर।
ध्या ज्ञानमय निज आतमा अर शीघ्र शिवसुख प्राप्त कर।। ७० ।।

ॐ ह्रीं एकत्वभावनापूर्वक–आत्मध्यानप्रेरक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि....।। ४०।।

अब, पुण्य–पाप की एकता को बताते हैं –

(हरिगीत)

हर पाप को सारा जगत ही बोलता ह्र यह पाप है।
पर कोई विरला बुध कहे कि पुण्य भी तो पाप है।। ७१ ।।

(दूहा)

इहु परियण ण हु महुतणउ, इहु सुहु-दुक्खहँ हेउ।
इम चिंतंतहँ किं करइ, लहु संसारहँ छेउ।। ६७ ।।
इंद फणिंद णरिंद य वि, जीवहँ सरणु ण होंति।
असरणु जाणिवि मुणि-धवल, अप्पा अप्प मुणंति।। ६८ ।।
इक्क उपज्जइ मरइ कु वि, दुहु सुहु भुंजइ इक्कु।
णरयहँ जाइ वि इक्क जिउ, तह णिव्वाणहँ इक्कु।। ६९ ।।
एक्कुलउ जइ जाइसिहि, तो परभाव चएहि।
अप्पा झायहि णाणमउ, लहु सिव-सुक्ख लहेहि।। ७० ।।
जो पाउ वि सो पाउ मुणि, सब्बु इ को वि मुणेहि।
जो पुण्णु वि पाउ वि भणइ, सो बुह को वि हवेइ।। ७१ ।।

लोह और सुवर्ण की बेड़ी में अन्तर है नहीं।
शुभ–अशुभ छोड़ें ज्ञानिजन दोनों में अन्तर है नहीं।। ७२ ।।

ॐ ह्रीं पुण्य–पाप एकत्वनिरूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ४१।।

अब, बाह्य निर्ग्रन्थ के साथ–साथ मन से निर्ग्रन्थ होने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

हो जाय जब निर्ग्रन्थ मन निर्ग्रन्थ तब ही तू बने।
निर्ग्रन्थ जब हो जाय तू तब मुक्ति का मारग मिले।। ७३ ।।

ॐ ह्रीं भावनिर्ग्रन्थप्रेरक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ४२।।

अब, अब दृष्टान्तपूर्वक देहदेवल में देव विराजमान होने की बात कहते हैं –

(हरिगीत)

जिस भाँति बड़ में बीज है और बड़ भी बीज में।
उस ही तरह त्रैलोक्य जिन आतम बसे इस देह में।। ७४ ।।

जिनदेव जो मैं भी वही इस भाँति मन निर्भ्रान्त हो।
है यही शिवमग योगिजन ! ना मंत्र है ना तंत्र है।। ७५ ।।

ॐ ह्रीं दृष्टान्तपुरस्सर देहदेवालयस्थ शुद्धात्मप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ४३।।

(दूहा)

जह लोहम्मिय णियउ बुह, तह सुण्णम्मिय जाणि।
जे सुहु असुह परिच्चयहिँ, ते वि हवंति हु णाणि।। ७२ ।।
जइया मणु णिग्गंथु जिय, तइया तुहुँ णिग्गंथु।
जइया तुहुँ णिग्गंथु जिय, तो लब्भइ सिवपंथु।। ७३ ।।
जं वडमज्झहँ बीउ फुडु, बीयहँ वडु वि हु जाणु।
तं देहहँ देउ वि मुणहि, जो तइलोय-पहाणु।। ७४ ।।
जो जिण सो हउँ सो जि हउँ, एहउ भाउ णिभंतु।
मोक्खहँ कारण जोइया, अण्णु ण तंतु ण मंतु।। ७५ ।।

अब,विविध गुणों के माध्यम से आत्मा को जानने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

दो तीन चउ अर पाँच नव अर सात छह अर पाँच फिर।
अर चार गुण जिसमें बसें उस आतमा को जानिए।। ७६ ।।

ॐ ह्रीं आत्मगुणनिरूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ४४।।

अब, शीघ्र निर्वाण प्राप्ति का उपाय बताते हैं –

(हरिगीत)

दो छोड़कर दो गुण सहित परमातमा में जो बसे।
शिवपद लहें वे शीघ्र ही ह्व इस भाँति सब जिनवर कहें।। ७७ ।।
तज तीन त्रयगुण सहित निज परमातमा में जो बसे।
शिवपद लहें वे शीघ्र ही ह्व इस भाँति सब जिनवर कहें।। ७८ ।।

ॐ ह्रीं शीघ्रनिर्वाणप्राप्त्युपायप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ४५।।

अब, पुनः आत्मा को जानने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

जो रहित चार कषाय संज्ञा चार गुण से सहित हो।
तुम उसे जानो आतमा तो परमपावन हो सको।। ७९ ।।
जो दश रहित दश सहित एवं दश गुणों से सहित हो।
तुम उसे जानो आतमा अर उसी में नित रत रहो।। ८० ।।

ॐ ह्रीं आत्मज्ञानप्रेरक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ४६।।

(दुहा)

बे ते चउ पंच वि णवह, सत्तहँ छह पंचाहँ।
चउगुण-सहियउ सो मुणह, एयइँ लक्खण जाहँ।। ७६ ।।
बे छंडिवि बे-गुण-सहिउ, जो अप्पाणि वसेइ।
जिणु सामिउ एमइँ भणइ, लहु णिव्वाणु लहेइ।। ७७ ।।
तिहिँ रहियउ तिहिँ गुण-सहिउ, जो अप्पाणि वसेइ।
सो सासय-सुइ-भायणु वि, जिणवरु एम भणेइ।। ७८ ।।
चउ-कसाय-सण्णा-रहिउ, चउ-गुण-सहियउ वुत्तु।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ, जिम परु होहि पवित्तु।। ७९ ।।
बे-पंचहँ रहियउ मुणहि, बे-पंचहँ संजुत्तु।
बे-पंचहँ जो गुणसहिउ, सो अप्पा णिरु वुत्तु।। ८० ।।

अब, आत्मा ही दर्शन, ज्ञान, चारित्र, संयम, शील, तप और प्रत्याख्यान यह बताते हैं – (हरिगीत)

निज आतमा है ज्ञान दर्शन चरण भी निज आतमा।
तप शील प्रत्याख्यान संयम भी कहे निज आतमा।। ८१ ।।

ॐ ह्रीं आत्ममहिमाप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ४७।।

अब, स्व-पर के जाननेरूप सन्यास का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

जो जान लेता स्व-पर को निर्भ्रान्त हो वह पर तजे।
जिन-केवली ने यह कहा कि बस यही संन्यास है।। ८२ ।।

ॐ ह्रीं स्व-परज्ञानरूपसन्यासनिरूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ४८।।

अब, रत्नत्रय ही मुक्ति का कारण है, अन्य नहीं यह बताते हैं –

(हरिगीत)

रतनत्रय से युक्त जो वह आतमा ही तीर्थ है।
है मोक्ष का कारण वही ना मंत्र है ना तंत्र है।। ८३ ।।

ॐ ह्रीं रत्नत्रयैव मुक्तिकारणप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ४९।।

अब, रत्नत्रय का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

निज देखना दर्शन तथा निज जानना ही ज्ञान है।
जो हो सतत वह आतमा की भावना चारित्र है।। ८४ ।।

ॐ ह्रीं रत्नत्रयस्वरूपनिरूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५०।।

(दूहा)

अप्पा दंसणु णाणु मुणि, अप्पा चरणु वियाणि।
अप्पा संजमु सील तउ, अप्पा पच्चक्खाणि।। ८१ ।।
जो परियाणइ अप्प परु, सो परु चयइ णिभंतु।
सो सण्णासु मुणेहि तहुँ, केवलणाणिं उत्तु।। ८२ ।।
रयणत्तय-संजुत्त जिउ, उत्तिमु तित्थु पवित्तु।
मोक्खहँ कारण जोइया, अण्णु ण तंतु ण मंतु।। ८३ ।।
दंसणु जं पिच्छियइ बुह, अप्पा विमल महंतु।
पुणु पुणु अप्पा भावियए, सो चारित्त पवित्तु।। ८४ ।।

अब, जहाँ आत्मा है, वहाँ सारे गुण हैं - यह समझाते हैं -

(हरिगीत)

जिन-केवली ऐसा कहें ह्न 'तहँ सकल गुण जहँ आतमा।'
बस इसलिए ही योगीजन ध्याते सदा ही आतमा।। ८५ ।।

ॐ ह्रीं यत्रात्मा तत्र सर्वगुणाः -इतिनिरूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ५१।।

अब, इन्द्रिय और मन-वचन-काय से रहित आत्मा को जानने की प्रेरणा देते हैं - (हरिगीत)

तू एकला इन्द्रिय रहित मन वचन तन से शुद्ध हो।
निज आतमा को जान ले तो शीघ्र ही शिवसिद्ध हो।। ८६ ।।
यदि बद्ध और अबद्ध माने बँधेगा निर्भ्रान्त ही।
जो रमेगा सहजात्म में तो पायेगा शिव शान्ति ही।। ८७ ।।

ॐ ह्रीं इन्द्रिय-मन-वचन-कायरहित आत्मज्ञानप्रेरक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५२।।

अब, सम्यग्दृष्टि जीव की दुर्गति नहीं होती, यह बताते हैं -

(हरिगीत)

जो जीव सम्यग्दृष्टि दुर्गति-गमन ना कबहूँ करें।
यदि करें भी ना दोष पूरब करम को ही क्षय करें।। ८८ ।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दृष्टिदुर्गतिगमननिषेधक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ५३।।

(दूहा)

जहिँ अप्पा तहिँ सयल-गुण, केवलि एम भणंति।
तिहिँ कारणएँ जोइ फुडु, अप्पा विमलु मुणंति।। ८५ ।।
एक्कलउ इंदिय-रहियउ, मण-वय-काय-ति-सुद्धि।
अप्पा अप्पु मुणेहि तुहुँ, लहु पावहि सिव-सिद्धि।। ८६ ।।
जइ बद्धउ मुक्कउ मुणहि, तो बंधियहि णिभंतु।
सहज-सरूवइ जइ रमहि, तो पायहि सिव संतु।। ८७ ।।
सम्माइट्ठी-जीवड़हँ, दुग्गइ-गमणु ण होइ।
जइ जाइ वि तो दोसु णवि, पुव्वक्किउ खवणेइ।। ८८ ।।

अब, सब व्यवहार से रहित आत्मा में रमने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

सब छोड़कर व्यवहार नित निज आतमा में जो रमें।
वे जीव सम्यग्दृष्टि तुरतहिं शिवरमा में जा रमें।। ८९ ।।
सम्यक्त्व का प्राधान्य तो त्रैलोक्य में प्राधान्य भी।
बुध शीघ्र पावे सदा सुखनिधि और केवलज्ञान भी।। ९० ।।

ॐ ह्रीं सर्वव्यवहाररहितात्मरमणप्रेरक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ५४।।

अब, जो आत्मा का ध्यान करते हैं, वे कर्मों से नहीं बंधते और पुराने कर्मों का नाश कर निर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

जहँ होय थिर गुणगणनिलय जिय अजर अमृत आतमा।
तहँ कर्मबंधन हों नहीं झर जाँय पूरव कर्म भी।। ९१ ।।
जिसतरह पद्मनि–पत्र जल से लिप्त होता है नहीं।
निजभावरत जिय कर्ममल से लिप्त होता है नहीं।। ९२ ।।
लीन समसुख जीव बारम्बार ध्याते आतमा।
वे कर्म क्षयकर शीघ्र पावें परमपद परमातमा।। ९३ ।।

ॐ ह्रीं कर्मक्षयकारणरूप–आत्मध्यानप्रेरक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ५५।।

(दूहा)

अप्प-सरूवइँ जो रमइ, छंडिवि सहु ववहारु।
सो सम्माइट्ठी हवइ, लहु पावइ भवपारु।। ८९ ।।
जो सम्मत्त-पहाण बुहु, सो तइलोय-पहाणु।
केवलणाण वि लहु लहइ, सासय-सुक्ख-णिहाणु।। ९० ।।
अजरु अमरु गुण-गण-णिलउ, जहिँ अप्पा थिरु ठाइ।
सो कम्मेहिँ ण बंधियउ, संचिय-पुव्व विलाइ।। ९१ ।।
जह सलिलेण ण लिप्पियइ, कमलणि-पत्त कया वि।
तह कम्मेहिं ण लिप्पियइ, जइ रइ अप्प-सहावि।। ९२ ।।
जो सम-सुक्ख-णिलीणु बुहु, पुण पुण अप्पु मुणेइ।
कम्मक्खउ करि सो वि फुडु, लहु णिव्वाणु लहेइ।। ९३ ।।

अब, आत्मा को जानने वाला ही सभी शास्त्रों को जानता है, यह बताते हैं - (हरिगीत)

पुरुष के आकार जिय गुणगणनिलय सम सहित है।
यह परमपावन जीव निर्मल तेज से स्फुरित है।। ९४ ।।
इस अशुचि-तन से भिन्न आतमदेव को जो जानता।
नित्य सुख में लीन बुध वह सकल जिनश्रुत जानता।। ९५ ।।
जो स्व-पर को नहीं जानता छोड़े नहीं परभाव को।
वह जानकर भी सकल श्रुत शिवसौख्य को ना प्राप्त हो।। ९६ ।।

ॐ ह्रीं सकलजिनश्रुतसार-आत्मज्ञानप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं ...।। ५६।।

अब, शिवसुख का स्वरूप समझाते हैं -

(हरिगीत)

सब विकल्पों का वमन कर जम जाय परम समाधि में।
तब जो अतीन्द्रिय सुख मिले शिवसुख उसे जिनवर कहें।। ९७ ।।

ॐ ह्रीं शिवसुखस्वरूपनिरूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ५७।।

अब, पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ध्यान को समझने की प्रेरणा देते हैं - (हरिगीत)

पिण्डस्थ और पदस्थ अर रूपस्थ रूपातीत जो।
शुभ ध्यान जिनवर ने कहे जानो कि परमपवित्र हो।। ९८ ।।

ॐ ह्रीं पिण्डस्थादिध्यानभेदप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५८।।

(दूहा)

पुरिसायार-पमाणु जिय, अप्पा एहु पवित्तु।
जोइज्जइ गुण-गण-णिलउ, णिम्मल-तेय-फुरंतु।। ९४ ।।
जो अप्पा सुद्धु वि मुणइ, असुइ-सरीर-विभिण्णु।
सो जाणइ सत्थइँ सयल, सासय-सुक्खहँ लीणु।। ९५ ।।
जो णवि जाणइ अप्पु परु, णवि परभाउ चएइ।
सो जाणउ सत्थइँ सयल, ण हु सिवसुक्खु लहेइ।। ९६ ।।
वज्जिय सयल-वियप्पइँ परम-समाहि लहंति।
जं विंदहिं साणंदु क वि सो सिव-सुक्ख भणंति।। ९७ ।।
जो पिंडत्थु पयत्थु बुह, रूवत्थु वि जिण-उत्तु।
रूवातीतु मुणेहि लहु, जिम परु होहि पवित्तु।। ९८ ।।

अब, सामायिक चारित्र का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

'जीव हैं सब ज्ञानमय'–इस रूप जो समभाव हो।
है वही सामायिक कहें जिनदेव इसमें शक न हो।। ९९ ।।

जो राग एवं द्वेष के परिहार से समभाव हो।
है वही सामायिक कहें जिनदेव इसमें शक न हो।। १०० ।।

ॐ ह्रीं सामायिकस्वरूपनिरूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५९।।

अब, छेदोपस्थापना चारित्र का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

हिंसादि के परिहार से जो आत्म–स्थिरता बढ़े।
यह दूसरा चारित्र है जो मुक्ति का कारण कहा।। १०१ ।।

ॐ ह्रीं छेदोपस्थापनास्वरूपप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ६०।।

अब, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

जो बढ़े दर्शनशुद्धि मिथ्यात्वादि के परिहार से।
परिहारशुद्धी चरित जानो सिद्धि के उपहार से।। १०२ ।।

(दूहा)

सव्वे जीवा णाणमया, जो समभाउ मुणेइ।
सो सामाइउ जाणि फुडु, जिणवर एम भणेइ।। ९९ ।।
राय-रोस बे परिहरिवि, जो समभाउ मुणेइ।
सो सामाइउ जाणि फुडु, केवलि एम भणेइ।। १०० ।।
हिंसादिउ-परिहारु करि, जो अप्पा हु ठवेइ।
सो बियऊ चारित्तु मुणि, जो पंचम-गइ णेइ।। १०१।।
मिच्छादिउ जो परिहरणु, सम्मद्दंसण-सुद्धि।
सो परिहार-विसुद्धि मुणि, लहु पावहि सिव-सिद्धि।। १०२ ।।

लोभ सूक्ष्म जब गले तब सूक्ष्म सुध–उपयोग हो।
है सूक्ष्मसाम्पराय जिसमें सदा सुख का भोग हो।। १०३ ।।

ॐ ह्रीं परिहारविशुद्धि–सूक्ष्मसाम्परायचारित्रस्वरूपनिरूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।। ६१।।

अब, आत्मा ही अरहन्तादि रूप है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

अरहंत सिद्धाचार्य पाठक साधु हैं परमेष्ठी पण।
सब आतमा ही हैं श्री जिनदेव का निश्चय कथन।। १०४ ।।
वह आतमा ही विष्णु है जिन रुद्र शिव शंकर वही।
बुद्ध ब्रह्मा सिद्ध ईश्वर है वही भगवन्त भी।। १०५ ।।
इन लक्षणों से विशद लक्षित देव जो निर्देह है।
कोई भी अन्तर है नहीं जो देह–देवल में रहे।। १०६ ।।

ॐ ह्रीं आत्मैव अरहन्तादिरूपनिरूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ६२।।

अब, त्रिकाल के सभी सिद्ध आत्मदर्शनपूर्वक ही हुये यह बताते हैं –

(हरिगीत)

जो होंयगे या हो रहे या सिद्ध अबतक जो हुए।
यह बात है निर्भ्रान्त वे सब आत्मदर्शन से हुए।। १०७ ।।

ॐ ह्रीं आत्मदर्शनपूर्वकसिद्धत्वप्राप्तिनिरूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं ...।। ६३।।

(दूहा)

सुहुमहँ लोहहँ जो विलउ, जो सुहुमु वि परिणामु।
सो सुहुमु वि चारित्त मुणि, सो सासय-सुह-धामु।। १०३ ।।
अरहंतु वि सो सिद्धु फुडु, सो आयरिउ वियाणि।
सो उवझायउ सो जि मुणि, णिच्छइँ अप्पा जाणि।। १०४ ।।
सो सिउ संकरु विण्हु सो, सो रुद्धु वि सो बुद्धु।
सो जिणु ईसरु बंभु सो, सो अणंतु सो सिद्धु।। १०५ ।।
एव हि लक्खण-लक्खियउ, जो परु णिक्कलु देउ।
देहहँ मज्झहिँ सो वसइ, तासु ण विज्जइ भेउ।। १०६ ।।
जे सिद्धा जे सिज्झिहिहिँ, जे सिज्झहिँ जिण-उत्तु।
अप्पा-दंसणिँ ते वि फुडु, एहउ जाणि णिभंतु।। १०७ ।।

अब, अन्तिम दोहे में शास्त्र लिखने के कारण को बताते हैं –

(हरिगीत)

भवदुखों से भयभीत योगीचन्द्र मुनिवर देव ने।
ये एकमन से रचे दोहे स्वयं को संबोधने ।। १०८ ।।

ॐ ह्रीं शास्त्ररचनाप्रयोजनप्ररूपक श्री योगसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ६४।।

जयमाला

(दोहा)

अर्घ्यावली पूरण हुई है आनन्द अपार।
अब जयमाला में सुनो योगसार का सार।। १ ।।

(वीर)

देह जीव को एक गिने रे वे आतम बहिरातम हैं।
जिनका अपने में अपनापन वे जिय अन्तर–आतम हैं।।
रागभाव को त्याग पूर्णतः वीतराग–सर्वज्ञ हुये।
वे आतम परमातम हैं वे अपने में ही लीन हुये ।। २ ।।

बहिरातम मिथ्यादृष्टि हैं अन्तर–आतम ज्ञानी हैं।
आनन्दमयी अरिहंत सिद्ध परमातम केवलज्ञानी हैं।।
परपदार्थ से अपनापन तज अपने को अपना जानो।
अपने में ही जमकर रमकर गहराई से पहिचानो ।। ३ ।।

अपने में अपनापन लाकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करो।
और साथ में इसी विधी से सम्यग्ज्ञानी बन जाओ।।
अपने में ही जमकर रमकर अपने में ही लीन रहो।
रत्नत्रय के धारी बनकर मुक्तिमार्ग में निकल पड़ो ।। ४ ।।

(दूहा)

संसारहँ भय-भीयएँ, जोगिचंद-मुणिएण।
अप्पा-संबोहण कया, दोहा इक्क-मणेण ।। १०८ ।।

यदि चाहते ज्ञानी बनना स्व-पर भेदविज्ञान करो।
निज को निज पर को पर जानों निज-पर की पहचान करो।।
पर को तज निज आतम को भज आतम में ही लीन रहो।
क्रोध मान के सब विकार तज आतम में लवलीन रहो।। ५ ।।

निज आतम को जाने बिन तुम निर्जन वन में वास करो।
अरे करोड़ों वर्ष तपो तप कितने ही उपवास करो।।
शुद्धभाव के बिना अरे तुम कितने ही शुभभाव करो।
भव से पार नहीं हो सकते निज आतम का ध्यान धरो।। ६ ।।

पुण्य-पाप से स्वर्ग-नर्क अर आत्मध्यान से मुक्ति मिले।
निज आतम का ज्ञान-ध्यान ही एकमात्र मुक्ति मग है।।
कहें जिनेश्वर मुक्तिमार्ग में पुण्य-पाप का काम नहीं।
और आतमा का अनुभव मुक्तीमग में बेकाम नहीं।। ७ ।।

पाप पाप है अरे जगत में सारी दुनियाँ कहती है।
किन्तु पुण्य भी अरे पाप है विरले ज्ञानी कहते हैं।।
पुण्य-पाप ये दोनों ही तो दुखमय भव के कारण हैं।
मुक्तिमार्ग में इन दोनों का ही अभाव आवश्यक है।। ८ ।।

जब स्वभाव से परमातम हैं सभी आतमा इस जग में।
किस को माने शत्रु-मित्र अब बोलो भाई इस जग में।।
राग करें हम किससे बोलो और शत्रु किस को मानें।
साम्यभाव सबसे ही रक्खें सब को साधर्मी जानें।। ९ ।।

निज आतम की रुचि है जिनको और तत्त्व को जो जानें।
स्व-पर भेदविज्ञानी हैं जो निज-आतम को पहिचानें।।
वे सच्चे साधर्मी भाई उनसे प्रेमभाव रखना।
अरे विधर्मी की संगति तज उनकी सत्संगति करना।। १० ।।

परभावों का परित्याग कर निज आतम को अपनाते।
परभावों से हो विरक्त निज आतम माँहि समा जाते।।
धन्य-धन्य वे जीव जगत में उनका जीवन धन्य हुआ।
ऐसे साधर्मी लोगों सा जग में कोइ न अन्य हुआ।। ११।।

जब यह आतमराम खोजता फिरे सुखमयी जीवन को।
तब ऐसे लगता है भाई सिद्ध खोजते भोजन को।।
जैसे नंत सुखी सिद्धों की भोजन खोज असंभव है।
उसीतरह सुखमय आतम की सुख की खोज असंभव है।। १२।।

भूतकाल में हुये सिद्ध या भाविकाल में जो होंगे।
और हो रहे हैं वे सब भी आत्मज्ञान से ही होंगे।।
इसमें शंका नहीं रंच भी अतः आतमा को जानो।
निज आतम में जमो-रमो निज आतम को ही पहिचानो।। १३।।

अपने लिये स्वयं का आतम परमब्रह्म परमातम है।
ब्रह्मा विष्णु महेश वही है पंच परमपरमेष्ठी है।।
जो कुछ है बस वही एक है परमेश्वर भगवन्त वही।
उसके आश्रय बिना न होगा इस भवजल[1] का अंत कहीं।। १४।।

अतः उसी में अपनापन कर उसको ही जानो-मानो।
उसमें ही जम जाव निरन्तर जमे रहो निज ध्यान धरो।।
यही एक मारग है जग में और न कोई मारग है।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण ही एकमात्र सन्मारग है।। १५।।

ॐ ह्रीं श्रीयोगसाराय नमः जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

देह और संयोग से बुद्धिपूर्वक मोड़।
योग और उपयोग को निज आतम में जोड़।। १६ ।।
यही योग का सार है यही धर्म का सार।
इससे सबको प्राप्त हो सुख अर शान्ति अपार।। १९ ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

१. संसार समुद्र

महाऽर्घ्य

(अडिल्ल[1])

पंच परम परमेष्ठी पूजूँ भाव से।
उनकी वाणी पूजूँ अधिक उछाह से।।
रतनत्रयमय परम शुद्ध उपयोग है।
दश धर्मों से मंडित पावन योग है।। १ ।।
गिरि कैलाश महान और पावापुरी।
सम्मेदाचल गिरनारी चम्पापुरी।।
आदि अनेकों सिद्धक्षेत्र मन भावने।
और अनेकों अतिशय क्षेत्र सुहावने।। २ ।।
तीन लोक में थान-थान अति ही घने।
कृत्रिम और अकृत्रिम चैत्यालय बने।।
इन सबकी पूजन करता हूँ चाव से।
बारह भावन भाऊँ अति उत्साह से।। ३ ।।
धर्मध्यान शुद्धोपयोग का योग है।
और परम तप स्वाध्याय संयोग है।।
यह सब चाहूँ और न कोई चाह है।
इन सबमें ही मेरा अति उत्साह है।। ४ ।।

(दोहा)

एकमात्र आराध्य है अपना ज्ञायकभाव।
उसमें तन्मय होय तो होय विभाव अभाव।। ६ ।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधुपंचपरमेष्ठिभ्यो नमः सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रेभ्यो नमः उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय नमः श्री सम्मेदशिखर-गिरनारगिरि-कैलाशगिरि-चम्पापुर-पावापुर-आदि सिद्धक्षेत्रेभ्यो नमः अतिशयक्षेत्रेभ्यो नमः त्रिलोकसम्बन्धी कृत्रिमाकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो नमः सर्वपूज्यपदेभ्यो नमः महार्घ्यं ....

---

१. अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आएगा? .... की धुन पर गायें।

शान्ति पाठ

(हरिगीत)

हे शान्ति के सागर जिनेश्वर! शान्ति के ही रूप हो।
नासाग्रदृष्टि शान्त मुद्रा स्वयं शान्तिस्वरूप हो।।
सारे जगत में शान्ति हो सारा जगत यह चाहता।
किन्तु सारे जगत को अपना बनाना चाहता।। १ ।।

जबकि इक अणुमात्र भी तो जगत में इसका नहीं।
अधिक क्या अणुमात्र को अपना बना सकता नहीं।।
यह बात शाश्वत सत्य है कोई किसी का रंच भी।
अच्छा-बुरा या अन्य कुछ भी कभी कर सकता नहीं।। २ ।।

मारना अर बचाना या दुःख-सुख का दान भी।
कोई किसी का ना करे आदान और प्रदान भी।।
यह बात केवलि ने कही जिनशास्त्र में उल्लेख है।
जैन शासन में समझ लो यह छठी का लेख है।। ३ ।।

शान्ति और अशान्ति ये तो आतमा के भाव हैं।
कोई किसी के क्यों करे ये तो स्वयं के भाव हैं।।
रे स्वयं मिथ्या मान्यता को बुद्धिपूर्वक छोड़ दें।
एवं स्वयं ही स्वयं में निज आतमा को जोड़ दें।। ४ ।।

शान्ति होती प्राप्त केवल आतमा के ज्ञान से।
आतमा के ज्ञान से अर आतमा के ध्यान से।।
यह ही परम सत्यार्थ है यह ही परम भूतार्थ है।
और सब व्यवहार है बस एक यह परमार्थ है।। ५ ।।

व्यवहार से हम भावना भाते सुखी संसार हो।
सुख-शान्ति चारों ओर हो ना समृद्धि का पार हो।।
अनुकूलता हो सब तरफ न आर हो न पार हो।
अधिक क्या अब हम कहें बस सब सुखी संसार हो।। ६ ।।

(दोहा)

सभी जीव इस लोक के सुखी रहें सर्वत्र।
मौसम की अनुकूलता बनी रहे सर्वत्र।। ७ ।।

प्राप्त करें सब जगत में निज आनन्द अपार।
निज आतम का ध्यान धर आतम शान्ति अपार।। ८ ।।

(नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें)

विसर्जन पाठ

(दोहा)

जो कुछ जैसी बन पड़ी अपनी शक्ति प्रमाण।
हमने पूजन की प्रभो अपनी भक्ति प्रमाण।। १ ।।

हमने जाना जो प्रभो जिनवाणी का मर्म।
उसके ही अनुसार सब यह व्यवहारिक धर्म।। २ ।।

इसमें जो कुछ रहीं हों कमियाँ विविध प्रकार।
विधि के जाननहार जन इसमें करें सुधार।। ३ ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

योगसार भक्ति

(रेखता)

करें हम योगसार गुणगान....

अरे यह अनुपम ग्रन्थ महान, किया इसमें आतम गुणगान।
करें हम पूजन और विधान, करें हम योगसार गुणगान।। टेक ।।

आतमा का प्रतिपादक ग्रन्थ, बताया इसमें मुक्तिपंथ।
बताया क्रियाकाण्ड को हेय, और आतम अनुभव आदेय।।
अरे यह अनुपम ग्रन्थ महान, किया इसमें आतम गुणगान।
करें हम पूजन और विधान, करें हम योगसार गुणगान।। १ ।।

अभी तक नहीं किया हे राम, आतमा के अनुभव का काम।
निरन्तर रहें राग परिणाम, न हुये वीतराग परिणाम।।
अरे यह अनुपम ग्रन्थ महान, किया इसमें आतम गुणगान।
करें हम पूजन और विधान, करें हम योगसार गुणगान।। २ ।।

करो तुम व्रत उपवास अनेक, किन्तु जानों न आतम एक।
और आतम का करो न ध्यान, अरे कैसे होगा कल्याण।।
अरे यह अनुपम ग्रन्थ महान, किया इसमें आतम गुणगान।
करें हम पूजन और विधान, करें हम योगसार गुणगान।। ३ ।।

अरे यह बहिरातमता हेय, और अन्तर आतम आदेय।
परम आतम है परमादेय, और अपना आतम श्रद्धेय।।
अरे यह अनुपम ग्रन्थ महान, किया इसमें आतम गुणगान।
करें हम पूजन और विधान, करें हम योगसार गुणगान।। ४ ।।

न होगा क्रियाकाण्ड से काम, धर्म यों ही होगा बदनाम।
बीत जावेगा काल अनन्त, नहीं आवेगा भव का अंत।।
अरे यह अनुपम ग्रन्थ महान, किया इसमें आतम गुणगान।
करें हम पूजन और विधान, करें हम योगसार गुणगान।। ५ ।।

नहीं हैं स्व-पर भेद विज्ञान नहीं है निज आतम का ज्ञान।
अरे होवे कैसे भव पार नहीं है निज आतम का ध्यान।।
अरे यह अनुपम ग्रन्थ महान, किया इसमें आतम गुणगान।
करें हम पूजन और विधान, करें हम योगसार गुणगान।। ६ ।।

आतमा जाने विरले लोग और विरले अपनापन करें।
और विरले ही अनुभव करें और विरले करते हैं ध्यान।।
अरे यह अनुपम ग्रन्थ महान, किया इसमें आतम गुणगान।
करें हम पूजन और विधान, करें हम योगसार गुणगान।। ७ ।।

अरे होता है मन निर्ग्रन्थ और तन होता है निर्ग्रन्थ।
धारते नग्न दिगम्बर संत अरे यह निर्ग्रन्थों का पंथ।।
अरे यह अनुपम ग्रन्थ महान, किया इसमें आतम गुणगान।
करें हम पूजन और विधान, करें हम योगसार गुणगान।। ८ ।।

(दोहा)

अरे आज तक जो हुये, परम सिद्ध भगवान।
वे सब आतम ध्यान से, और भेदविज्ञान।। ९ ।।

-●-